संघर्ष के नायक
जे.पी.

संघर्ष के नायक
जे.पी.

हरि प्रसाद

ज्ञान विज्ञान एजूकेयर

प्रकाशक • **ज्ञान विज्ञान एजूकेयर**
3639, प्रथम तल
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली–110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2022
मूल्य • एक सौ पचास रुपए
मुद्रक • आर–टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

SANGHARSH KE NAYAK J.P. *by* Shri Hari Prasad ₹ 150.00
Published by **GYAN VIGYAN EDUCARE**
3639 Netaji Subhash Marg, Darya Ganj, New Delhi-110002
ISBN 978-93-92574-65-8

विषय-सूची

1. प्रारंभिक जीवन 7
2. शिक्षा एवं दांपत्य जीवन 11
3. उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाना 18
4. भारत वापसी 24
5. एक क्रांतिकारी के रूप में 29
6. अंग्रेज प्रशासन को चेतावनी 37
7. जयप्रकाश का ऐतिहासिक बयान 40
8. अगस्त क्रांति 44
9. जयप्रकाश का उग्र रूप 47
10. आजादी और बँटवारा 54
11. भारत की स्वतंत्रता एवं जयप्रकाश का राजनीति से संन्यास 59
12. आपातकाल एवं जे.पी. आंदोलन 71
13. महाप्रयाण 77

प्रारंभिक जीवन

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में एक गाँव है–सिताब दियारा। सिताब दियारा कभी बिहार राज्य की सीमा में आता था, पर सीमाओं में परिवर्तन के कारण आज यह उत्तर प्रदेश राज्य में आता है।

प्रकृति के प्रकोप से शायद ही कोई बच पाया हो। वर्ष 1902 में सिताब दियारा में प्लेग का प्रकोप जंगल की आग की तरह फैल गया। इस प्लेग की बीमारी ने खुशियों से लहलहाते सिताब दियारा गाँव को अपना ग्रास बना लिया और देखते-ही-देखते यह गाँव भयानक रूप से प्लेग की चपेट में आ गया। जयप्रकाश के माता-पिता हरसु दयाल व फूलरानी देवी ने इस बीमारी से भयभीत होकर गाँव छोड़ने का मन बना लिया। वे अपने पैतृक गाँव सिताब दियारा को छोड़कर बलिया जिले के ही बाबूखाती नामक स्थान पर चले गए, जहाँ उनकी पहले से ही खेती-बाड़ी थी। इसी बाबूखाती नामक स्थान पर 11 अक्तूबर, 1902 को भारत के महान् सपूत जयप्रकाश नारायण का जन्म हरसु दयाल व फूलरानी देवी के पुत्र के रूप में हुआ था।

परंतु दुर्भाग्य ने उनके परिवार का पीछा नहीं छोड़ा। जयप्रकाश से बड़े उनके एक भाई और दो बहनें थीं। बड़े भाई हरिप्रकाश की

मृत्यु तेरह वर्ष की अवस्था में ही हैजे की बीमारी से हो गई और उनकी बड़ी बहन चंद्राभानु, जो हरिप्रकाश के बाद की थीं, की मृत्यु प्लेग की बीमारी से हो गई, जिसने उनके परिवार को दु:खों के सागर में डुबो दिया। अब जयप्रकाश से बड़ी एक बहन, जिनका नाम चंद्रावली था, ही शेष रह गई थीं। बाद में जयप्रकाश से छोटी बहन चंद्रकला और भाई राजेश्वर का जन्म हुआ। अपने परिवार के

बीच जयप्रकाश सबके दुलारे और प्यारे थे। उन्हें प्यार से परिवारवाले 'बऊल' कहकर पुकारते थे।

जयप्रकाश बचपन से ही अत्यंत उदार और दयालु प्रकृति के थे। वह छोटे हों या बड़े, सभी जीवों और प्राणियों के प्रति स्नेह व सहानुभूति रखते थे। वह सत्यवादी और स्पष्टवादी थे। वह कभी भी झूठ और अमानवीय तथ्यों का सहारा नहीं लेते थे। किसी भी प्राणी की सेवा और भलाई करना तो मानो उनकी दिनचर्या में शामिल था।

उनका मानना था कि इस संसार के सभी प्राणी ईश्वरकृत हैं और जो उनके प्रति प्रेम व सहानुभूति नहीं रखता, वह प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर का अनादर करता है। उनका सोचना था कि रुपए-पैसे और बहुमूल्य वस्तुओं का सहयोग तो हस्तांतरित प्रक्रिया है; परंतु सेवा और सहानुभूति ही एक ऐसी स्थायी व अनमोल भेंट है, जिसका एहसास प्राणी के हृदय में जीवनपर्यंत विद्यमान रहता है और जिसे कभी भी लौटाया नहीं जा सकता। उनकी उदार एवं दयालु प्रकृति इस घटना से साफ झलकती है—उनके घर में कबूतरों का एक जोड़ा था। जयप्रकाशजी को इस जोड़े से काफी लगाव एवं मित्रता थी। एक दिन लू लगने से एक कबूतर की मृत्यु हो गई। भावुक और दयालु जयप्रकाश इस आघात को सहन न कर पाए। वह इस घटना से इतना विक्षुब्ध हो गए कि पूरे दिन और रात कुछ नहीं खाया। कबूतर का जोड़ा उनके मनोरंजन का मुख्य साधन था, जिसके साथ जयप्रकाश मित्र की तरह खेला करते थे। इसके अलावा जयप्रकाश पालतू जानवरों एवं पक्षियों से भी काफी प्रेम रखते थे—जैसे हिरन, कुत्ता, तोता, मैना आदि। उनके घर में एक घोड़ा भी था। उसके साथ वे व्यस्त रहते थे। घोड़े के साथ खतरनाक खेल खेलने के कारण उनके पिता नाराज होते थे और उस घोड़े को बेच देना चाहते थे, परंतु जयप्रकाश अपने पिता को ऐसा करने से मना करते थे।

बचपन से ही जयप्रकाश धीर-गंभीर प्रकृति के थे। वह

एकांत एवं शांति प्रिय थे। वह खेल-कूद में कोई रुचि नहीं रखते थे। वह घर पर अपनी बहन एवं भाई के साथ जानवरों एवं पक्षियों से तरह-तरह के खेल खेलते थे। परंतु खेल के मैदान में जाकर अपने मित्रों के साथ खेलना उनकी अभिरुचि में नहीं था। इसलिए गाँव के लोग एवं युवा पीढ़ी स्थानीय भोजपुरी भाषा में उन्हें 'बुढ़ लड़िका' के नाम से पुकारते थे। खेल-कूद में रुचि नहीं रखते हुए भी जयप्रकाश सभी मामलों में उदासीन नहीं थे, बल्कि प्रत्येक पहलू पर प्रथम व अग्रणी थे।

□

शिक्षा एवं दांपत्य जीवन

जब जयप्रकाश नारायण छह वर्ष के हुए तब उनका नामांकन गाँव के ही प्राथमिक विद्यालय में करवा दिया गया। वे पढ़ने में बड़े ही कुशाग्र बुद्धि के थे। घर पर आदिल मिश्रा नाम के एक शिक्षक आकर उन्हें प्रतिदिन पढ़ाया करते थे। एक बार उनके पिता कुछ बातों को लेकर उनके शिक्षक से नाराज हो गए और उन्होंने शिक्षक को पढ़ाने आने से मना कर देने का निर्णय लिया। तब जयप्रकाश ने अपने पिताजी को मनाया और उनसे बोले कि ट्यूशन छुड़वा देने से उनके शिक्षक आदिल मिश्रा बेरोजगार हो जाएँगे। जब पिता ने शिक्षक के प्रति अपने पुत्र की सहानुभूति को देखा तो उन्हें अपने निर्णय को बदलना पड़ा।

जब प्राइमरी शिक्षा समाप्त (पूर्ण) हो गई, तब आगे की शिक्षा के लिए जयप्रकाश को गाँव से बाहर पटना भेजा गया। नौ वर्ष की अवस्था में उनका दाखिला सातवीं कक्षा में पटना के एक स्कूल में करा दिया गया। जयप्रकाश के लिए यह पहला अवसर था जब उन्होंने अपने दादाजी के साथ बैलगाड़ी से पटना की यात्रा की थी। उनके एक करीबी रिश्तेदार छात्र भी इसी स्कूल में पढ़ते थे, जिनका नाम शंभुशरण वर्मा था और जो पटना में ही अपने मकान में

जयप्रकाश नारायण अपनी पत्नी प्रभावती के साथ

रहते थे। जयप्रकाश 'सरस्वती भवन' छात्रावास में रहकर अपना अध्ययन कार्य करने लगे।

एक बार ऐसी घटना घटी कि कॉलेज के एक सहपाठी ने उनकी एक पुस्तक चुरा ली। यह जानते हुए कि उनकी पुस्तक

किसने चुराई है, उन्होंने किसी से इस घटना के बारे में शिकायत नहीं की। परंतु उनके शिक्षक को इस बात की जानकारी किसी प्रकार से हो गई। उन्होंने उस छात्र को बुलाकर काफी डाँटा-फटकारा। तब उस छात्र ने उनकी वह पुस्तक लौटा दी। जयप्रकाश को सबके सामने शिक्षक द्वारा उस छात्र को डाँटा जाना बुरा लगा। इसके लिए जयप्रकाश ने जाकर अपने सहपाठी छात्र से क्षमा माँगी। छात्र शर्मिंदगी महसूस करते हुए जयप्रकाश के उदार व्यवहार से रो पड़ा।

पुस्तक मिलने के बाद जयप्रकाश ने अपने सहपाठी से हाथ मिलाते हुए कहा, ''तुम बहुत ही नेक एवं ईमानदार हो। मैं तो जानता भी नहीं था कि मेरी पुस्तक गलती से तुम्हारे पास चली गई है। तुमने मेरे पुस्तक को नहीं चुराया है। मेरी याददाश्त इधर बहुत ही कमजोर हो गई है। मैंने तुम्हें पुस्तक दी, परंतु भूल गया। मैं बहुत ही शर्मिंदा हूँ। तुमने मेरी पुस्तक को सुरक्षित रखा और लौटाया। इसके लिए मैं प्रसन्न हूँ।''

इन सब उदारवादी बातों को सुनकर सहपाठी की आँखों में आँसू आ गए और वह बोला, ''जयप्रकाश, सच्चाई तो यह है कि मैंने आपकी पुस्तक चुराई थी। परंतु आपने मेरे साथ फिर भी सराहनीय व्यवहार किया, ताकि मैं आगे चोरी न करूँ।''

जयप्रकाश ने अपने सहपाठी से कहा कि अगर वह गलती को आंतरिक रूप से स्वीकार करता है तब एक वादा करना होगा कि भविष्य में कभी भी ऐसी गलती नहीं करेगा और न ही किसी वस्तु को लालच की दृष्टि से देखेगा। सहपाठी ने वादे को दोहराया और फिर दोनों ने हाथ मिलाए।

सचमुच ही उदार प्रकृति, सहृदय, अच्छे चरित्र, दया, सहानुभूति, स्नेह जयप्रकाश को बचपन से ही विरासत में मिले थे।

हमेशा मौन रहनेवाले जयप्रकाश ने कभी भी गलत बात को तथा अन्यायपूर्ण व अनुचित बातों को मौन रहकर नहीं स्वीकारा। वे

सभी जाति-धर्मों का समान रूप से सम्मान करते थे। वह न तो अपनी गलती को स्वीकार करने में हिचकते थे और न ही दूसरे की गलती को एहसास करवाने से पीछे रहते।

स्कूल के शिक्षक एवं प्राचार्य जयप्रकाश के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर काफी गर्व करते थे। उस समय उस स्कूल के प्राचार्य साईं अमजद अली खान थे। वह बड़े ही नेक एवं योग्य शिक्षक थे। वह छात्रों के केवल शैक्षणिक एवं मानसिक विकास के लिए ही प्रयत्नशील नहीं थे, बल्कि उनके चारित्रिक विकास के लिए भी अथक लगनशील थे। वह राष्ट्रीय स्तर पर उदारवादी और चरित्रवान् समुदाय की कल्पना को साकार करना चाहते थे।

कुछ दिन बाद जयप्रकाश की बड़ी बहन चंद्रावती की शादी हो गई। उनके जीजा श्री ब्रजबिहारी सहाय पटना उच्च न्यायलय में एक प्रसिद्ध वकील थे। अब जयप्रकाश स्कूल के 'सरस्वती भवन' छात्रावास को छोड़कर अपने जीजा एवं बहन के साथ रहने लगे थे। इनके जीजा श्री ब्रजबिहारी सहाय बहुत ही ऊँचे विचार और चरित्र के व्यक्ति थे। इनसे जयप्रकाश को अपने चरित्र-निर्माण में काफी सहयोग मिला।

जयप्रकाश अनुभव करते थे कि उनके कॉलेज में बहुत से अच्छे-अच्छे विद्यार्थी हैं, जो उनसे मित्रता भी करना चाहते थे। परंतु जयप्रकाश को हमेशा ही शांतिप्रिय एवं एकांतमय वातावरण पसंद था।

अध्यापकों द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर जयप्रकाश ने कभी भी अपनी कक्षा में खड़े होकर नहीं दिया। इसका मतलब यह नहीं था कि जयप्रकाश पढ़ने में साधारण एवं कमजोर थे और प्रश्न के उत्तर नहीं जानते थे, बल्कि वह अति तीव्र एवं कुशाग्र बुद्धि के थे। उनकी गणना हमेशा ही प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों में होती थी। वह सदैव ही किसी भी परीक्षा में सम्मानजनक अंक के साथ उत्तीर्ण

होते थे।

जयप्रकाश आयोजित सेमिनार एवं डीबेट में भाग नहीं लेते थे और न तो खेल-कूद संबंधी आयोजित किसी प्रतियोगिता में भाग लेते, न देखने में रुचि रखते थे। एक बार उनके सहपाठी सुरेश चंद्र मिश्रा ने उनके बारे में लिखा, ''खेल-कूद स्कूल का अनिवार्य एवं अभिन्न अंग है। जबकि खेल-कूद से बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि स्कूल के दो-तीन मेधावी छात्र खेल-कूद में भाग नहीं लेते। खास करके जयप्रकाश जी, सिंधेश्वरी सिंह, जो स्कूल में सबसे तेज विद्यार्थी थे, यदा-कदा खेल मैदान में आते थे; परंतु जयप्रकाशजी बिलकुल नहीं।''

हिंदी भाषा पर जयप्रकाश की अच्छी पकड़ थी। हिंदी में उनकी पकड़ का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 'बिहार में हिंदी की स्थिति' विषय पर निबंध प्रतियोगिता में वे पूरे भारत में प्रथम आए थे। हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी और संस्कृत का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। गणित में भी उनकी विशेष रुचि थी।

सन् 1919 में जयप्रकाश ने पटना कॉलेजिएट स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए उन्हें मेधावी स्कॉलरशिप मिली और पटना कॉलेज में आई.एस.सी. में प्रवेश मिला। इसी साल जून माह में उनका विवाह श्रीनगर गाँव के निवासी व प्रतिष्ठित वकील ब्रजकिशोर बाबू की पुत्री प्रभावती से तय हो गया।

इस समय पूरे देश में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध असंतोष व आक्रोश की लहर दौड़ रही थी। 13 अप्रैल, 1919 को घटित जलियाँवाला बाग हत्याकांड ने पूरे देश को झकझोरकर रख दिया था।

इसी समय जयप्रकाश पुस्तकों के माध्यम से गांधीवादी विचारधारा से अवगत हुए। उन्होंने सत्याग्रह और दक्षिण अफ्रीका में उसके

प्रयोग के बारे में पढ़ा। गांधी की इस विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह इसके कायल हो गए और साथ ही इस विचारधारा के समर्थन में अपने विचारों का खुलकर प्रदर्शन करने लगे।

सन् 1920 में प्रभावती से उनका विवाह संपन्न हो गया। इस विवाह में किसी भी प्रकार का दहेज नहीं लिया गया। साथ ही 1920 में ही जयप्रकाश पहली बार गांधीजी से मिले। इस मुलाकात का उन पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा।

सन् 1921 में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन का आह्वान किया। जयप्रकाश पहले से ही गांधीजी से काफी प्रभावित थे। थोड़ी दुविधा के पश्चात् उन्होंने कॉलेज की शिक्षा का परित्याग कर दिया और आंदोलन में कूद पड़े। वह खादी पहनने लगे थे और चरखा चलाना भी सीख लिया था।

चौरीचौरा की घटना के कारण गांधीजी ने आंदोलन को वापस ले लिया। बहुत सारे छात्र दोबारा कॉलेज जाने लगे, पर जयप्रकाश ने अंग्रेजों द्वारा चलाई जा रही शिक्षण संस्थाओं में वापस जाने से साफ इनकार कर दिया। पिताजी के दबाव के कारण उन्होंने बिहार विद्यापीठ में दाखिला लिया और वहीं से आई.एस.सी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

उस समय उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड जाना एक प्रचलन-सा था। जयप्रकाश की भी इच्छा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जाने की थी, पर उन्होंने इंग्लैंड जाने से मना कर दिया, क्योंकि उनका मानना था कि वह उस देश में शिक्षा-प्राप्ति के लिए नहीं जा सकते जिसने उनके देश को गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है।

उन्होंने अमेरिका जाने का निर्णय लिया। अमेरिका की छवि पूरे विश्व में हो रहे विभिन्न स्वतंत्रता आंदोलनों के समर्थक देश के

रूप में थी। इस बात ने भी जयप्रकाश के अमेरिका जाने के निर्णय में बड़ी भूमिका निभाई थी।

इसी समय ब्रजकिशोर बाबू, जो जयप्रकाश के ससुर थे, ने अपनी वकालत छोड़ दी और कांग्रेस के साथ स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गए।

□

उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाना

जयप्रकाशजी ने प्रभावती को भी अपने साथ अमेरिका चलने के लिए लिखा, किंतु प्रभावती ने इनकार कर दिया; परंतु उन्हें अमेरिका जाने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके पिता हरसुदयाल और ससुर ब्रजकिशोर बाबू भी उनके अमेरिका जाने के लिए सहमति प्रकट की एव ं प्रोत्साहित किया। परंतु उनकी माँ ने अनिच्छा जाहिर की। वह बहुत उदास एवं दु:खी हुईं। वह जयप्रकाश को अपने कलेजे का टुकड़ा मानती थीं, जिसे अपनी आँखों से ओझल होने देना नहीं चाहती थीं। उस समय जयप्रकाश की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। फिर भी निश्चय के धनी जयप्रकाश ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्होंने जापान के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान से अग्रिम सहायता प्राप्त की। साथ ही अपने किराए एवं रास्ते के खर्चों के लिए दूसरे अन्य स्रोतों से व्यवस्था की। 16 मई, 1922 को जयप्रकाश पटना से कलकत्ता के लिए रवाना हुए। वहाँ से 16 अगस्त को वह 'जेनेस' नामक मालवाहक जहाज पर सवार होकर आगे की यात्रा पर निकल गए। लगभग तीस दिन की यात्रा में रंगून, सिंगापुर और हांगकांग होते हुए जापान के कोबे बंदरगाह पर पहुँचे। दस दिन जापान में रहकर 'तैयामार' नामक जहाज से वह याकोहामा से अमेरिका के लिए चल पड़े।

एक लंबी यात्रा के पश्चात् 8 अक्तूबर, 1922 के दिन जयप्रकाश अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य के सैन फ्रांसिस्को नगर पहुँचे। वहाँ कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रवेश के बारे में पता करने पर पता चला कि नया सत्र जनवरी से आरंभ होनेवाला था और अभी उसमें तीन महीने का समय शेष था। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उन्होंने इस तीन महीने का सदुपयोग करने का निर्णय किया।

उन्होंने अंगूर के एक फार्म में नौकरी कर ली। एक महीने उन्होंने जमकर मेहनत की और कुछ डॉलर कमाए, जो उस समय उनके लिए काफी महत्त्वपूर्ण थे।

इसी नौकरी के दौरान जयप्रकाश शेर खान नामक व्यक्ति के संपर्क में आए। शेर खान के उदार व्यक्तित्व और दूसरे के धर्म के प्रति सम्मान की भावना ने जयप्रकाश के मानस-पटल पर गहरा प्रभाव छोड़ा। शेर खान के व्यक्तित्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब तक जयप्रकाश उसकी मंडली में रहे, उसने खाने में गो-मांस नहीं बनने दिया। फलों के मौसम की समाप्ति हो जाने पर जयप्रकाश वापस बर्कले लौटे और जनवरी 1923 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग में प्रथम वर्ष में प्रवेश ले लिया।

बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में वह कुछ भारतीय विद्यार्थियों से मिले, जो पहले से वहाँ शिक्षा प्राप्त करने हेतु आए

हुए थे। इन सब भारतीय विद्यार्थियों ने मिलकर एक समिति बनाई, जिसे भारतीय विद्यार्थी 'नालंदा क्लब' के नाम से पुकारते थे। जयप्रकाश डॉ. मेनन (भारतीय) से भी मिले, जो चतुर्थ वर्ष के विद्यार्थी थे और कुछ दिन उनके कमरे में ही ठहरे।

कैलिफोर्निया में क्रिश्चियन छात्रों के सहयोग एवं रोजगार-प्राप्ति हेतु एक ब्यूरो नामक संस्था का निर्माण किया गया था। वहाँ छुट्टी के दिनों में विद्यार्थी रोजगार के सुअवसर प्राप्त कर सकते थे। जयप्रकाश नारायण ने भी सहयोग एवं रोजगार के लिए उस संस्था में आवेदन दिया। परंतु इस ब्यूरो ने उस समय उन्हें किसी भी प्रकार का सहयोग एवं रोजगार देने से इनकार कर दिया।

प्रथम सत्र के परीक्षार्थी जयप्रकाश ने प्रथम श्रेणी से परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रैक्टिकल को छोड़कर उन्हें ए ग्रेड प्राप्त हुआ, यानी 90 प्रतिशत। इतने अच्छे प्रदर्शन के बावजूद जयप्रकाश द्वितीय सत्र में प्रवेश नहीं ले सके। विश्वविद्यालय का बढ़ा हुआ शुल्क वहन करने में वह असमर्थ थे।

अपनी आर्थिक विषमता को देखते हुए जयप्रकाश ने अपने पूर्व परिचित भोलादत्त से संपर्क बनाया, जो आयोवा विश्वविद्यालय में विद्यार्थी थे। भोलादत्त ने आयोवा विश्वविद्यालय में ही नामांकन करवाने के लिए उन्हें परामर्श दिया। इस आयोवा विश्वविद्यालय में भारतीय विद्वान् सुधींद्र बोस प्रोफेसर थे। उनकी भी अनुमति एवं सहयोग उन्हें मिला। इस विद्यालय में फीस नाम मात्र ही थी, जो उनके लिए वरदान सिद्ध हुई।

इस प्रकार जयप्रकाश ने आयोवा विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया। आयोवा विश्वविद्यालय की फीस कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की फीस से लगभग एक चौथाई ही थी। यहाँ जयप्रकाश ने जर्मन और फ्रेंच भाषा के साथ-साथ कुछ समय के लिए केमिकल इंजीनियरिंग का भी अध्ययन किया। इसी विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने जयप्रकाश को 'जे.पी.' कहकर पुकारना शुरू किया।

बाद में जयप्रकाश इसी नाम से पहचाने जाने लगे और उनका यह नाम अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

आयोवा विश्वविद्यालय में एक वर्ष अध्ययन करने के पश्चात् जयप्रकाश ने विस्कांसिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। साथ ही अपना खर्च वहन करने के लिए जयप्रकाश विभिन्न प्रकार के छोटे-मोटे काम करते रहे। उन्होंने बर्फ हटाने, वैरा, खिड़कियाँ साफ करने इत्यादि का काम किया।

जयप्रकाश विस्कांसिन में मार्क्सवादी नेता लेनिन और ट्रॉसकी के विचारों से प्रभावित हुए। मार्क्सीज्म पर प्रकाशित सभी पुस्तकों का उन्होंने गहन अध्ययन किया। मार्क्सवाद पर अत्यधिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से यह रात्रि में 'रशियन टेलर' नामक जगह पर जाकर पढ़ाई करते थे। जयप्रकाशजी अमेरिका में 'कम्युनिस्ट चैपटर' के सदस्य बन गए और शिकागो में वरिष्ठ कम्युनिस्ट नेताओं से मिले।

विस्कांसिन विश्वविद्यालय में जयप्रकाश का रुझान सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में होने लगा। साथ ही मार्क्सवादी विचारधारा ने भी उनके मन-मस्तिष्क पर प्रभाव डालना शुरू किया। धीरे-धीरे वह पक्के मार्क्सवादी बन गए। मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव में अपने एक मित्र मैनुअल गोमेज की सलाह पर साम्यवादी विचारधारा और क्रांतिकारी तौर-तरीकों के अध्ययन के लिए उन्होंने मास्को जाने का निर्णय किया।

पर यहाँ पर पैसे की कमी ने रास्ता रोक लिया। अतः अपनी पढ़ाई छोड़कर पैसा कमाने के से वह शिकागो चले गए। अमेरिका उस समय संकट से गुजर रहा था। बेरोजगारी ने वहाँ भयानक रूप धारण कर लिया था। इस माहौल में काम ढूँढ़ना असंभव-सा प्रतीत हो रहा था।

कड़ाके की ठंड और विपरीत परिस्थितियों में धीरे-धीरे जयप्रकाश को टांसिल की बीमारी ने घेर लिया। मित्रों की सहायता से जयप्रकाश

इस बीमारी से उबरे। बाद में उन्होंने पिताजी से आर्थिक सहायता माँगी और खुद को कर्ज से मुक्त किया।

घरवालों को जब यह पता चला कि जयप्रकाश मास्को जाना चाहते हैं तो उन लोगों ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद से कहा कि वह जयप्रकाश को मास्को जाने से रोकें। राजेंद्र प्रसाद के अनुरोध पर जयप्रकाश ने मास्को जाने का विचार स्थगित कर दिया और फिर विस्कांसिन विश्वविद्यालय जाकर पढ़ाई शुरू कर दी।

विस्कांसिन विश्वविद्यालय में एक सत्र की पढ़ाई पूर्ण करने के पश्चात् जयप्रकाश अपने मित्र एब्राम लैडी की सलाह पर ओहियो विश्वविद्यालय चले गए। वहीं से 31 अगस्त, 1928 को उन्होंने बी.ए. की परीक्षा पास की। अच्छे प्रदर्शन के कारण उन्हें 30 हजार डॉलर की छात्रवृत्ति मिली और तीन महीने के बाद उसी विश्वविद्यालय में सहायक अध्यापक की नौकरी भी मिल गई। साथ ही उन्होंने एम.ए. में भी प्रवेश ले लिया।

एम.ए. के छात्र के रूप में जयप्रकाश ने अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा दिया। छात्र और शिक्षकगण जयप्रकाश की बुद्धि और सदाचारिता का गुणगान करते नहीं थकते थे। मनोविज्ञान के प्रोफेसर अल्बर्ट बीस ने कहा था कि यह विद्यार्थी आगे चलकर एक सामाजिक 'तत्त्ववेत्ता' के रूप में नाम कमाएगा।

13 अगस्त, 1929 को जयप्रकाश को एम.ए. की डिग्री प्रदान कर दी गई। इसके बाद उन्होंने अमेरिका में ही पी-एच.डी. करने का मन बना लिया। पर उसी समय उन्हें अपनी माँ के बीमार होने का समाचार मिला और उन्हें वापस भारत लौटना पड़ा।

जयप्रकाश ने अपनी शिक्षा अत्यधिक मेहनत और विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए प्राप्त की थी। इस कारण उनके मन में श्रम के प्रति अगाध श्रद्धा की भावना का विकास हो गया था। उन्होंने खुद कहा था कि, ''मानवमात्र की समानता और श्रम का गौरव, श्रम की प्रतिष्ठा मेरे लिए कोरे शब्द नहीं बल्कि प्रत्यक्ष

अनुभूति बन गए।''

दृढ़ निश्चयी जयप्रकाश ने अनेक आर्थिक तंगियों, यातनाओं एवं समस्याओं पर विजय हासिल करते हुए अपनी ऊँची शिक्षा की मंजिल को पार किया। उन्होंने अपनी फीस, अपने खर्चे के निर्वाह के लिए अतिरिक्त समय में अनेक जगहों पर कार्य किया। उन्होंने कभी किसी कार्य को छोटा नहीं समझा, उसे करने में शर्मिंदगी महसूस नहीं की। अपने विद्यार्थी जीवन में छुट्टियों में भी समय को उन्होंने निरर्थक नहीं गँवाया।

□

4

भारत वापसी

पूरे सात वर्ष अमेरिका में रहने के पश्चात् जयप्रकाश वर्ष 1929 में भारत वापस लौटे। जयप्रकाश भारत वापस आने के लिए ऑस्ट्रेलियाई समुद्री जहाज पर सवार हुए। जहाज फ्रांस के रास्ते होता हुआ कोलंबो पहुँचा। कोलंबो से दूसरे जहाज से वह धनुषकोटी पहुँचे। फिर वहाँ से ट्रेन के रास्ते मद्रास होते हुए कलकत्ता के रास्ते पटना पहुँचे। पटना में ही जयप्रकाश अपनी पत्नी प्रभावती से मिले। उस समय तक प्रभावती में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो चुका था, जिसे जयप्रकाश ने भी अनुभव किया। इस समय तक प्रभावती शारीरिक ऐश्वर्य और दांपत्य सुख को तिलांजलि देकर बिलकुल सादा जीवन और उच्च विचार की प्रवर्तक बन चुकी थीं, जो जयप्रकाश नारायण को पसंद नहीं आया। वह सात वर्ष विदेश में एकाग्र जीवन बिताने के बाद दांपत्य सुख की ओर लौटना चाहते थे, परंतु प्रभावती तो अपना रास्ता ही बदल चुकी थीं और पुन: पीछे लौटना नहीं चाहती थीं। इधर जयप्रकाश के अमेरिका प्रवास काल में प्रभावती ने एक लंबा समय साबरमती आश्रम में गांधीजी के साथ बिताया। वहीं पर प्रभावती ने गांधीजी के ब्रह्मचर्य के विचारों से प्रभावित होकर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था। वह गांधीजी के परमप्रिय शिष्यों में से एक हो गई थी।

वर्ष 1929 में जयप्रकाश प्रभावती के साथ गांधीजी से मिलने साबरमती आश्रम गए। वहाँ उनका कस्तूरबा गांधी ने दामाद की तरह स्वागत किया। पर जयप्रकाश गांधीजी से प्रभावित होकर ब्रह्मचर्य व्रत लेने की बात को लेकर काफी रुष्ट (नाराज) थे। गांधीजी के प्रति यह भावना उनके मन में कई दिनों तक बनी रही; पर अंत में गांधीजी की बातों से प्रभावित होकर उन्होंने भी ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लिया।

अमेरिका से आने के बाद जयप्रकाश की मुलाकात कांग्रेस के अन्य बड़े-बड़े नेताओं से हुई। उनकी मुलाकात जवाहरलाल नेहरू से भी हुई। पहली मुलाकात के साथ ही उन दोनों में घनिष्ठता हो गई। घनिष्ठता और जयप्रकाश की योग्यता से प्रभावित होकर

जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें कांग्रेस के मजदूर शोध विभाग का उत्तरदायित्व सौंप दिया। जयप्रकाश प्रभावती के साथ इलाहाबाद आ गए।

जयप्रकाश बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की पढ़ाई हेतु समाजशास्त्र विभाग खुलवाना चाहते थे। वह इसके लिए बी.एच.यू. के कुलपति पं. मदन मोहन मालवीय से मिले और इस प्रस्ताव को रखा। मालवीयजी ने उनके विचारों से प्रभावित होकर सहमति प्रदान कर दी। परंतु जयप्रकाश ने पहले इस बारे में जवाहरलाल नेहरू से सलाह लेना आवश्यक समझा। जवाहरलाल नेहरू ने इससे सहमति नहीं जताई एवं उन्हें पूर्व में दी गई जिम्मेदारी को समझने के लिए उपयुक्त एवं आवश्यक समझा। जिम्मेदारी को कुशलतापूर्वक संपादन किए जाने से जवाहरलाल नेहरू उनसे काफी प्रभावित हुए। वह उन्हें कांग्रेस की स्थायी सदस्यता प्रदान कर देना चाहते थे, साथ ही मंत्रिमंडल में कैबिनेट मंत्री बना देना चाहते थे, जो जगह पूर्व मंत्री राजाराव के मरणोपरांत रिक्त हुई थी। परंतु अपनी माँ के निरंतर बिगड़ते स्वास्थ्य के कारण जयप्रकाश काफी चिंतित एवं परेशान थे।

जयप्रकाश उस समय मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास करते थे। पर उन्होंने यह पाया कि इस समय देश को आजादी कांग्रेस ही दिलवा सकती है। गांधीजी से अनेक मुद्दों पर मतभेद होने के बावजूद उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व को एक बेहतर लक्ष्य के लिए स्वीकार करना ही उचित समझा। धीरे-धीरे जयप्रकाश ने कांग्रेस में अपनी गहरी जगह बना ली और उनके नेतृत्व को लोगों ने स्वीकार करना शुरू कर दिया।

इसी समय जयप्रकाश की माँ का देहांत हो गया। माँ के श्राद्ध इत्यादि से निवृत्त होकर जयप्रकाश फिर से कांग्रेस के कार्यों में लिप्त हो गए।

देश में इस समय नमक सत्याग्रह जोरों पर था। इसी समय

जयप्रकाश को पत्र मिला कि पिता को पक्षाघात हुआ है। घर जाने पर घर की विकट आर्थिक स्थिति से जयप्रकाश चिंतित हो उठे। उन्होंने अपनी स्थिति के बारे में गांधीजी को पत्र लिखा। गांधीजी ने उनकी स्थिति को समझते हुए घर की समस्या को निपटाने की सलाह दी तथा साथ ही घनश्याम दास बिड़ला को पत्र लिखकर जयप्रकाश को उनके यहाँ नौकरी पर लगवा दिया। घनश्याम दास बिड़ला जयप्रकाश की योग्यता से बड़े प्रभावित हुए और उन्हें अपना पी.ए. बना लिया। लगभग छह महीने बिड़ला के यहाँ नौकरी करने के पश्चात् उन्होंने नौकरी छोड़ दी और वापस कांग्रेस के कार्य में संलग्न हो गए।

कांग्रेस के प्रमुख नेतागणों की गिरफ्तारी एवं प्रशासन द्वारा कांग्रेस पार्टी को अवैध करार दिए जाने के कारण देश की आजादी के लिए कांग्रेस द्वारा किए जा रहे आंदोलन में कुछ समय के लिए शिथिलता आ गई थी।

फिर कुछ समय उपरांत कांग्रेस कार्यसमिति की अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडू को निर्वाचित किया गया। श्रीमती नायडू एवं जयप्रकाश हमेशा एक-दूसरे के संपर्क में रहते थे एवं मिलते-जुलते

रहते थे। जयप्रकाश श्रीमती नायडू के समक्ष सभी कागजात को प्रस्तुत करते हुए उनसे कांग्रेस एवं स्वतंत्रता आंदोलन से निहित प्रत्येक मामले में आवश्यक परामर्श लेते थे। किसी भी गंभीर मामले में दोनों संयुक्त रूप से मिलकर निर्णय लेते थे। फलस्वरूप कांग्रेस को पर्याप्त सांगठनिक मजबूती प्राप्त हुई।

□

एक क्रांतिकारी के रूप में

देश में आजादी की लहर सभी जगहों में तेजी से फैल चुकी थी। कोई भी भारतीय अंग्रेज प्रशासन के नियंत्रणाधीन अपना जीवन बिताना नहीं चाह रहा था। अंग्रेजों का अत्याचार एवं जुल्म दिनोदिन बढ़ता ही जा रहा था। अंग्रेज भारतीयों को कोल्हू के बैल से अधिक कुछ नहीं समझते थे। वे भारतीय आंदोलनकारियों पर कहर ढा रहे थे। अनावश्यक रूप से भारतीयों को संगीन जुर्म में फँसाया जा रहा था—उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ झेलने के लिए मजबूर किया जा रहा था। अंग्रेजों के जुल्म और आजादी की पुकार ने उदारवादी दयालु जयप्रकाश के हृदय को तार-तार कर दिया। फलतः देश की तत्कालीन परिस्थिति एवं घटना ने उन्हें क्रांति का झंडा उठाने के लिए विवश कर दिया।

अनेक घरेलू समस्याओं एवं आर्थिक विषमता से घिरे हुए भी जयप्रकाश ने देश के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध चुनौती को स्वीकार किया और दृढ़ संकल्पित होकर उसमें कूद पड़े। जयप्रकाश अपनी सभी समस्याओं को अनदेखा कर, निजी स्वार्थ से परे हटकर, अपनी जान की परवाह न कर देश एवं देशवासियों की सुरक्षा के लिए सिर पर कफन बाँध लिया।

वर्ष 1932 में दूसरा गोलमेज सम्मेलन विफल हो गया।

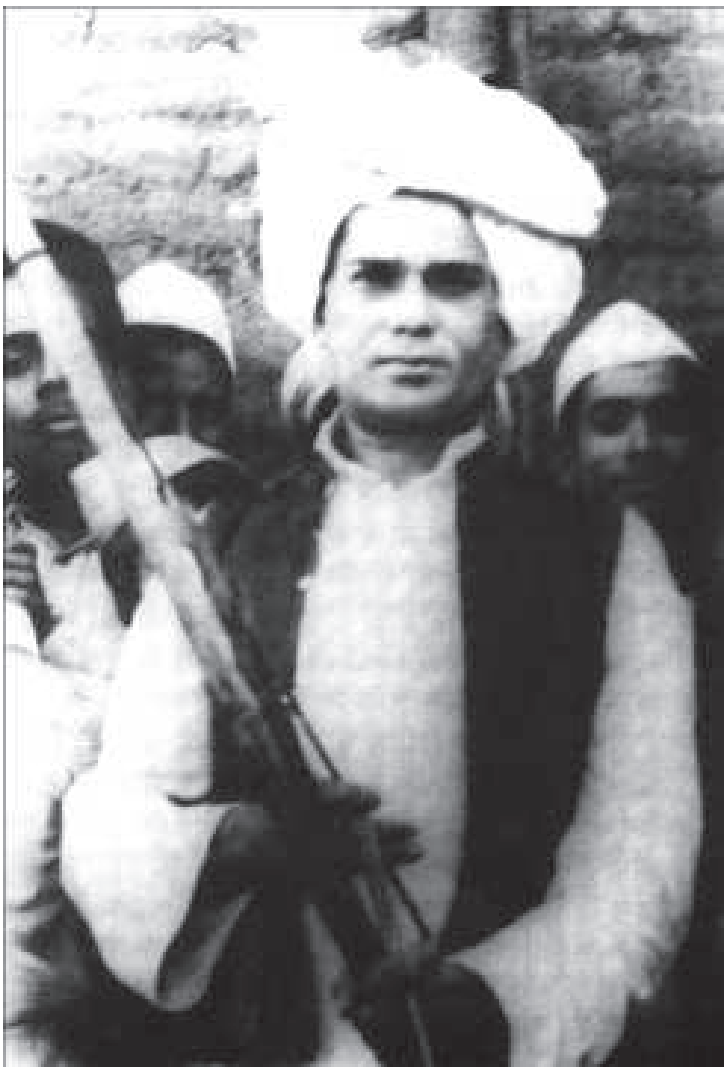

गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू और अनेक प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। प्रमुख नेताओं की अनुपस्थिति में जयप्रकाश ने आंदोलन की गति बनाए रखने का भार अपने ऊपर ले लिया।

उन्होंने इस जिम्मेदारी को कुशलतापूर्वक निभाया। पुलिस की नजरों से वह सफलतापूर्वक बचते रहे।

7 सितंबर, 1932 को जयप्रकाश को गिरफ्तार कर लिया गया। इस समय ब्रिटेन से लेबर पार्टी का शिष्टमंडल भारत के दौरे पर आया हुआ था। जयप्रकाश ने शिष्टमंडल को विभिन्न स्थानों पर ले जाकर अंग्रेजों के अत्याचार को शिष्टमंडल के सामने लाने का जुर्म किया था। जयप्रकाश की गिरफ्तारी काफी चर्चित रही। बंबई के अखबार 'फ्री प्रेस जर्नल' ने एक लेख प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था–'कांग्रेस ब्रेन अरेस्टेड'।

जयप्रकाश की यह पहली गिरफ्तारी थी। नासिक जेल में जयप्रकाश राममनोहर लोहिया, मीनू मसानी, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता इत्यादि समाजवादी विचारधारा से प्रभावित लोगों के संपर्क में आए। जयप्रकाश पहले से ही मार्क्सवाद से प्रभावित थे। इनके संपर्क में आने से उनमें समाजवादी विचारधारा के प्रति प्रेम और बढ़ गया।

वर्ष 1933 में वह जेल से रिहा हो गए। 1934 में जनवरी में बिहार में विनाशकारी भूकंप आया। भूकंप ने बिहार में तबाही मचा दी। हजारों लोग बेघर हो गए, लाखों जान-माल की क्षति हुई। वहाँ के लोग भूखे-प्यासे, फटेहाल अवस्था में खुले आसमान के नीचे जीवन बिताने को मजबूर हो गए। इस घटना ने जयप्रकाश को दहला दिया। वह और उनकी पत्नी प्रभावती द्रवित एवं भाव-विह्वल हो भूकंप-पीड़ितों की सहायतार्थ बिना समय गँवाए बिहार पहुँचे और एक लक्ष्य अपनाकर भूकंप-पीड़ितों की सहायता एवं सेवा करने लगे। घायलों एवं प्रभावित लोगों को तत्काल यथासंभव चिकित्सा सहयोग एवं इलाज उपलब्ध करवाया। पीड़ितों के लिए अनाज, कपड़ा एवं मौलिक आवश्यकताओं की व्यवस्था प्रशासन के माध्यम से करवाई। भूकंप-पीड़ितों को सुरक्षा एवं देखभाल में आशातीत तत्परता दिखलाई, उनके लिए सारी राहत सामग्री का

प्रबंध करवाया।

बिहार में भूकंप-पीड़ितों के साथ तब तक अपना बहुमूल्य समय बिताया जब तक वे लोग पूर्णतः ठीक नहीं हो गए। प्रभावती ने भी इस कार्य में जयप्रकाश का हाथ बँटाया।

भूकंप-पीड़ितों की स्थिति के सामान्य हो जाने पर वह बिहार से वापस आ गए और अपने लक्ष्य में जुट गए। जयप्रकाश अपना कुछ समय अपने समाजवादी पार्टी के संगठन एवं विकास पर देने लगे। उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी नेता डॉ. संपूर्णानंद भारत में समाजवादी वातावरण को बहाल करने के लिए तैयारी में जुट गए। भारत में समाजवादियों की समिति कायम हो, इसके लिए प्रयास तेज कर दिए गए। 17 मई, 1934 को पटना के अंजुमन इसलामिया हॉल में सभा आयोजित की गई। इसी बैठक में औपचारिक रूप से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की घोषणा की गई।

दूसरी तरफ देश में एक विभिन्न राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव स्थापित हो रहा था, जो कांग्रेस की नीतियों में विश्वास नहीं करता था। इसकी शुरुआत उसी समय हो गई थी, जब 1933 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय सुभाषचंद्र बोस और विट्ठलभाई पटेल ने गांधीजी के नेतृत्व को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था।

इसी माहौल में 17 मई, 1934 को पटना में एक सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता आचार्य नरेंद्र देव ने की। इसी अवसर पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया गया। इसका उद्देश्य पूर्ण स्वराज व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना था। इस पार्टी के ज्यादातर सदस्य कांग्रेस के ही थे। जयप्रकाश को इस पार्टी का संगठन मंत्री बनाया गया।

अक्तूबर 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. संपूर्णानंद ने की। यहाँ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की घोषणा की

गई और यहीं पर आचार्य नरेंद्र देव को पार्टी का अध्यक्ष तथा जयप्रकाश को महासचिव के पद के लिए चुना गया। आचार्य नरेंद्र देव एवं जयप्रकाश के अलावा इस पार्टी में और भी ऐसे लोग थे जिन्होंने आनेवाले समय में भारतीय राजनीतिक व सामाजिक पटल पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जैसे–अच्युत पटवर्धन, राममनोहर लोहिया, मीनू मसानी, सेठ दामोदर स्वरूप, मुंशी अहमद दीन, शिवनाथ बनर्जी, मोहनलाल गौतम इत्यादि।

जयप्रकाश ने महसूस किया कि अगर आजादी पानी है तो ऐसे लोगों का एक ऐसा बड़ा समूह बनाना होगा, जो गैर-राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित हो और जो सामान्य जन के अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से काम करे। उन्होंने सामान्य जन और किसानों की सहभागिता पर जोर दिया।

जयप्रकाश का कहना था कि उद्योग और कृषि व्यक्तिगत स्वामित्व में नहीं होने चाहिए। उनका मानना था कि जमीन पर उसी का अधिकार होना चाहिए जो उसपर खेती कर रहा है। पर साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी कहा कि ये सारे परिवर्तन अचानक नहीं बल्कि धीरे-धीरे होने चाहिए, जिससे कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को कोई आघात न लगे। अपने इस दृष्टिकोण से जयप्रकाश ने यह साबित किया कि उनके विचार दूरदर्शिता से परिपूर्ण थे। अपने इन्हीं विचारों को प्रकट करने हेतु उन्होंने एक पुस्तक 'व्हाई सोशलिज्म' लिखी, जो 1936 में प्रकाशित हुई।

नेहरू ने लखनऊ सत्र में कांग्रेस की कार्यकारिणी में आचार्य नरेंद्र देव और अच्युत पटवर्धन को कांग्रेस में शामिल कर लिया। यह बात कांग्रेस के नरम दल के लोगों को पसंद नहीं आई। इस विवाद का परिणाम यह निकला कि कांग्रेस कार्यकारिणी के सात सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया। गांधीजी और जयप्रकाश के प्रयासस्वरूप ही त्यागपत्र वापस हो सके।

सन् 1935 में भारत सरकार अधिनियम, 1935 का भारतीय

राजनीतिक पटल पर आगमन हुआ। कांग्रेस के अधिकांश लोगों ने इस अधिनियम को स्वीकार कर लिया। इस अधिनियम के तहत विभिन्न प्रांतों में चुनी हुई सरकारों की स्थापना का प्रस्ताव था। लेकिन साथ ही मुख्य सत्ता वायसराय के हाथ में ही केंद्रित थी। जयप्रकाश ने इस अधिनियम को मानने से इनकार कर दिया। उनका मानना था कि इस प्रकार सत्ता विदेशियों के हाथ में ही केंद्रित रह जाएगी।

कांग्रेस के अंदर इस अधिनियम के पक्ष में भारी समर्थन को देखते हुए जयप्रकाश ने कांग्रेस कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया और अपना सारा समय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को मजबूत बनाने में लगाने लगे।

कम्युनिस्टों ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की तीखी आलोचना की थी, फिर भी जयप्रकाश ने पार्टी में कम्युनिस्टों के प्रवेश पर लगी रोक को हटा दिया। जयप्रकाश के इस निर्णय का आचार्य नरेंद्र देव ने समर्थन किया। कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव पी.सी. जोशी व जयप्रकाश में इसी कालक्रम में अच्छी दोस्ती हो गई थी। कम्युनिस्ट समाजवादियों की आलोचना करते न थकते थे, पर यही साम्यवादी जयप्रकाश को भारत का लेनिन व हिंदुस्तान का 'क्रांतिकारी नंबर वन' भी कहा करते थे।

जयप्रकाश ने पार्टी में कम्युनिस्टों के प्रवेश का निर्णय अपनी पार्टी में विरोध के बावजूद लिया था। उन्होंने सोचा था कि इसके अच्छे परिणाम होंगे। पर परिणाम अच्छे साबित नहीं हुए। कांग्रेस अध्यक्ष के मामले में सुभाषचंद्र बोस की अध्यक्षता को समर्थन के मामले में वादा देकर भी कम्युनिस्ट वादे पूरा नहीं कर सके। इस घटना से कम्युनिस्टों से जयप्रकाश का मोहभंग हो गया। उन्होंने कम्युनिस्टों के कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में प्रवेश के अपने निर्णय के मामले में अपनी गलती को स्वीकारा।

फरवरी 1937 के चुनाव में कांग्रेस को उल्लेखनीय सफलता

मिली। कांग्रेस को पाँच प्रांतों–बिहार, संयुक्त प्रांत, उड़ीसा, मध्य प्रांत व मद्रास में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। इन प्रांतों में कांग्रेस सरकार की स्थापना की गई।

जयप्रकाश ने प्रांतीय सरकारों की स्थापना के बाद राजनीतिक कैदियों की रिहाई की माँग का नारा दिया–रिलीज ऑर रिजाइन। बिहार और संयुक्त प्रांत के मंत्रिमंडल को इस्तीफा देना पड़ा। अंतत: अंग्रेज सरकार को कैदियों को रिहा करना पड़ा।

इसके साथ जयप्रकाश कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को मजबूत करते रहे। 'कांग्रेस सोशलिस्ट' नामक पत्रिका का प्रकाशन, युवक संघ, महिला संघ, स्वयंसेवक संघ जैसे मुद्दों पर ध्यान देना शुरू कर दिया। जयप्रकाश ने समाजवादी विचारधारा के दृष्टिकोण को प्रकट करनेवाली लगभग पाँच सौ पुस्तकों को सूचीबद्ध भी किया। इन पुस्तकों का अध्ययन पार्टी सदस्यों के लिए अनिवार्य था। 139 'मैगजीन' पत्रिका, जिसका कार्यालय मोडेज स्ट्रीट स्थित बाम्ब किले में खुला, के संपादक अशोक मेहरा बने।

विभिन्न शहरों में पुस्तक क्लबों की स्थापना की गई तथा इन पुस्तक क्लबों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने पं. नेहरू, सुभाषचंद्र बोस इत्यादि नेताओं से अपील की।

जयप्रकाश ने अपने पत्र में सुभाष से कहा, ''मैं 25 तारीख को कलकत्ता पहुँच जाऊँगा। आपके पास एवं कुछ दिन वहाँ ठहरकर बुक क्लब के लिए चंदा इकट्ठा करूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे इस कार्य में सहयोग प्रदान करेंगे।''

सुभाष ने जयप्रकाश की इस अपील को सहृदय से स्वीकार किया और उन्हें इसमें आशातीत मदद पहुँचाई।

वर्ष 1937 के चुनाव में कांग्रेस की सफलता के पश्चात् भारतीय राजनीति में एक ऐसा प्रकरण सामने आने लगा जिसने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को हिला दिया। यह प्रकरण था मुसलमानों का मुसलिम लीग की तरफ पलायन करना। मुसलमानों में यह

धारणा बैठी कि कांग्रेस और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी उनके अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकती है। जयप्रकाश इससे विचलित हो उठे। उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द कायम रखने के लिए प्रयास तेज कर दिए।

जयप्रकाश ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के बावजूद कांग्रेस को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। उनका कहना था कि समाजवादी पक्ष का गठन कांग्रेस से प्रतिद्वंद्विता रखने हेतु नहीं बल्कि कांग्रेस को मजबूत बनाने हेतु किया गया है।

सन् 1938 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के लाहौर में आयोजित अधिवेशन में जयप्रकाश को पहली बार कांग्रेस कार्यकर्ताओं के कारनामे से धक्का पहुँचा, जब कांग्रेसियों ने तीन रंग का झंडा दिखाते हुए अपनी कांग्रेस की आंतरिक भावना को उजागर किया और जयप्रकाश से लाल झंडे के बारे में विश्लेषण करने को कहा, जो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सांकेतिक झंडा था। जयप्रकाश ने स्पष्ट किया कि दो प्रकार के झंडों से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक ही है–स्वतंत्रता की लड़ाई को मजबूत बनाना। दो रंगी झंडे के बीच कुछ अनौपचारिक समझौते हुए थे। परंतु कांग्रेसी तीन रंगी झंडों तले आंदोलन करना चाहते थे, जो जयप्रकाशजी को पसंद नहीं था, क्योंकि उनका उद्देश्य देश को दलगत आधार बनाना नहीं था बल्कि आजादी हासिल करना था।

□

6

अंग्रेज प्रशासन को चेतावनी

सितंबर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध का श्रीगणेश हो चुका था। जर्मनी ने पोलैंड पर धावा बोल दिया था। ठीक उसी समय पटना के 'अंजुमन इसलामिया हॉल' में एक सभा आयोजित की गई, जिसकी अध्यक्षता आचार्य नरेंद्र देव ने की। इस बैठक में प्रथम वक्ता के रूप में संबोधित करते हुए जयप्रकाश ने कहा कि इस द्वितीय विश्वयुद्ध का न तो कोई उद्देश्य व स्वरूप है, न ही कोई ओर-छोर। यह समृद्ध एवं महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रों द्वारा अपनी शक्ति का प्रदर्शन मात्र है, ताकि अनैतिक शक्ति का प्रयोग कर गरीब एवं कमजोर देशों को भयभीत किया जा सके और उन पर रोब गाँठा जा सके तथा विश्व स्तर पर अपनी ताकत का ढिंढोरा पीटा जा सके। इसलिए वर्तमान भारतीय परिस्थिति का आकलन करते हुए हमें तटस्थ रहना होगा। हमें युद्ध में शामिल होने से अपने आपको बचाए रखना होगा।

जयप्रकाश ने द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत के शामिल होने का विरोध किया तथा इस युद्ध को साम्राज्यवाद के लिए लड़े जानेवाले युद्ध की संज्ञा दी और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अपनी कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

अपने एक भाषण में उन्होंने कहा, ''इस युद्ध में शामिल होने

का अर्थ होगा अंग्रेजों का साथ देना, जो हम भारतीयों के लिए बहुत शर्मनाक होगा। हमारा उद्देश्य अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बगावत को स्थायी अंजाम देना था, जिसने विश्व के बहुत से देशों पर अपना आधिपत्य कायम कर रखा था, उसे उखाड़ फेंकना था। अर्थात् भारत एवं भारतीयों के सामने एक सूत्री लक्ष्य है–भारत को आजाद कराना और अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करना, जिसके लिए हम सभी भारतवासियों को संप्रदाय, धर्म, जाति एवं वर्ग विभेद को भुलाकर, पक्के वादे एवं सच्चे इरादे को अपनाकर दृढ़ संकल्प होकर आजादी के लिए मर मिटना।

भाषण के दौरान जयप्रकाश ने चेतावनी भरे लहजे में अंग्रेजी सत्ता को खुलेआम ललकारा। उन्होंने वहाँ लोगों से अपील करते हुए कहा कि भारत से ब्रिटिश सत्ता का खात्मा कर डालें, उसका नामोनिशान मिटा डालें। ब्रिटिश पुलिस एवं ब्रिटिश अदालत और कानून की संपूर्ण रूप से अवहेलना एवं अनादर करें।

18 फरवरी, 1940 के दिन जमशेदपुर में उन्होंने अत्यंत ही क्रांतिकारी भाषण दिया। उन्होंने टिस्को यूनियन एवं श्रमिक संघ के लोगों को संबोधित करते हुए कहा कि, ''आप लोग काम करना बंद कर दें और हड़ताल पर चले जाएँ, ताकि उत्पादन ठप हो जाए और विश्वयुद्ध में भरपाई की जानेवाली आवश्यक सामग्री उपलब्ध न हो सके।'' भारतीय लोगों के प्रति जयप्रकाश की इस अपील एवं आह्वान ने अंग्रेज प्रशासन को बिजली-सा झटका दिया। अंग्रेजी सरकार अपने अपमान और आक्रोश को नियंत्रित नहीं कर पाई। फलत: इस भाषण के कारण जयप्रकाश को गिरफ्तार कर लिया गया तथा हजारीबाग जेल में डाल दिया गया। आम जनता में इस गिरफ्तारी के कारण रोष की लहर दौड़ने लगी। महात्मा गांधी, पं. नेहरू इत्यादि नेताओं ने जयप्रकाश की गिरफ्तारी की आलोचना की तथा कहा कि इससे सरकार ने सीधे टकराव की स्थिति पैदा कर दी है। जयप्रकाश की गिरफ्तारी की खबर बिजली की गति से पूरे

देश में फैल गई। सभी देशवासियों का हृदय आग के अंगारे की तरह दहकने लगा और अंग्रेजों के विरुद्ध लिए जानेवाली प्रतिशोध की ज्वाला संपूर्ण भारत में अग्नि की भाँति धधकने लगी। लोग बेकाबू होकर अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत के लिए सड़कों पर उतर आए। तोड़-फोड़ की प्रक्रिया शुरू हो गई, जो अंग्रेजी शासन के लिए सिरदर्द बन गई। अंग्रेजी हुकूमत ने इसे दबाने का बहुत प्रयास किया, परंतु विफलता ही हाथ लगी। जयप्रकाश के ओजपूर्ण भाषण और क्रांतिकारी नसीहत ने भारतीय नौजवानों को दीवाना बना दिया था। उनके अटल निर्णय एवं हठ के आगे अंग्रेजों को घुटने टेकने पड़े।

□

7

जयप्रकाश का ऐतिहासिक बयान

जब जयप्रकाश को अंग्रेजी प्रशासन के द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया तो वे तनिक भी विचलित नहीं हुए, बल्कि पूर्व की भाँति ही सामान्य और अडिग दिखे। वह अपने आपको पूर्ण रूप से देश के लिए अर्पण कर चुके थे।

15 मार्च, 1940 को उन्हें अंग्रेज मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया गया। जयप्रकाश ने मजिस्ट्रेट को लिखित बयान दिया कि–

''मेरा देश व देशवासी किसी भी कीमत पर एवं किसी भी तरह से इस विश्वयुद्ध में अपनी भागीदारी नहीं निभाना चाहते हैं; क्योंकि ऐसा करने से अंग्रेजी साम्राज्यवाद को बढ़ावा एवं संरक्षण दिए जाने के समान होगा। साथ ही यह फैसला हम भारतवासियों के लिए विषपान करने के जैसा होगा। क्या हम भारतीय इतने नादान–गँवार हैं कि अपने ही हाथों विषैले सर्प को दूध पिलाएँगे, जिसने हमें परतंत्रता की जंजीर में जकड़कर स्वच्छंद साँस लेने को भी गुनाह बना दिया है।'' उन्होंने कहा, ''हम सभी भारतीयों की चुनौती संयुक्त रूप से प्रत्यक्षत: वैसे तंत्रों से है, जो विश्व–विजय की आकांक्षा से स्वार्थ पूर्ण, जघन्य एवं घृणित कार्यों को कर रहे हैं।'' जयप्रकाश के इस बयान से साफ झलकता है कि उनमें

देशभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी थी। अदालत में उन्होंने बहुत ही लंबा बयान दिया। यह जानते हुए भी कि अंग्रेजी सत्ता में उनके विरुद्ध बगावत की आवाज उठाना मौत को निमंत्रण देना है, फिर भी जे.पी. इस दु:साहसपूर्ण बयान को देने में तिल भर भी पीछे नहीं रहे।

गांधीजी ने उनके बयान को 'हरिजन' नामक समाचार-पत्र के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित करवाया। गांधीजी ने उनके बयान से प्रभावित होकर खुद ही लिखा कि जयप्रकाश के बयान का अंतिम भाग देश एवं देशवासियों के प्रति उनकी असीम ममता और स्नेह को दरशाता है। देश की गुलामी से प्रभावित उनके हृदय की वंदना ने उन्हें घायल शेर की स्थिति में ला दिया था और वह अंग्रेज प्रशासन की आँखों में काँटे की तरह चुभने लगे और तब तक चुभते रहेंगे जब तक देश आजाद नहीं हो जाएगा।

वर्ष 1940 के अंत में जयप्रकाश को जेल से रिहा कर दिया गया। जेल से बाहर आने के बाद जयप्रकाश ने जगह-जगह जाकर अंग्रेजों के विरुद्ध जनमत बनाना शुरू किया। विभिन्न राज्यों में गुप्त संस्थाएँ स्थापित की गईं। इसी कारण उन्हें बंबई में गिरफ्तार कर लिया गया। यहाँ से बिना कोई मुकदमा चलाए उन्हें 23 अप्रैल, 1940 को राजस्थान के देवली कैंप में डाल दिया गया। यहाँ पर पूरे भारत के लगभग पाँच सौ राजनीतिक कैदी व क्रांतिकारी जमा थे।

देवली कैंप में उन्होंने कैदियों की दयनीय स्थिति को देखकर माँग रखी कि कैदियों को अपने प्रांतों की जेलों में भेज दिया जाए। अपनी इस माँग के समर्थन में उन्होंने आमरण अनशन शुरू कर दिया। गांधीजी ने भी जयप्रकाश की माँगों और अनशन का समर्थन किया। इस अनशन में जयप्रकाश के साथ लगभग दो सौ कैदियों ने भी भाग लिया था। सरकार को माँग के आगे झुकना पड़ा। सभी कैदियों को अपने-अपने प्रांत की जेलों में भेज दिया गया। इसके

साथ ही देवली कैंप को समाप्त कर दिया गया।

देश भर में अंग्रेजों के खिलाफ भड़के असंतोष को दबाने के लिए ब्रिटेन से 23 मार्च, 1942 को सर स्टेफर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में क्रिप्स मिशन को भारत भेजा गया। क्रिप्स मिशन की कांग्रेसी नेताओं से बातचीत असफल रही। 2 अप्रैल को कांग्रेस कार्यकारिणी ने भी क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों के प्रति असहमति जताई।

क्रिप्स मिशन की असफलता ने वार्ता के सारे अवसर खत्म कर दिए। आजादी के लिए अब सीधे संघर्ष की तैयारी होने लगी। गांधीजी ने विभिन्न भाषणों के द्वारा ब्रिटिश सरकार को आनेवाले संग्राम की चेतावनी दे डाली।

इसी घटनाक्रम के बाद 6 अगस्त के दिन बंबई में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हो गया। गांधीजी ने राष्ट्र के नाम संदेश में लोगों से आह्वान किया–करो या मरो। अगले दिन 9 अगस्त को सुबह गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया।

जेल में बंद जयप्रकाश का हृदय इस आंदोलन में भाग लेने के लिए व्याकुल हो उठा। उन्होंने अपने कुछ साथियों के साथ जेल से भाग निकलने की योजना बनाई। भागनेवाले कैदियों में जयप्रकाश के अलावा शालिग्राम सिंह, योगेंद्र शुक्ल, सूर्यनारायण सिंह, रामनंदन मिश्र, गुलाबचंद गुप्त इत्यादि थे।

योजनानुसार 8 नवंबर, 1942 को जेल से भागना तय किया गया। 8 नवंबर दीपावली का दिन था। दीपावली के माहौल का लाभ उठाकर इस कार्य को अंजाम दिया गया। एक के ऊपर एक चढ़कर उन लोगों ने मानव सीढ़ी का निर्माण किया। जिस व्यक्ति ने 17 फीट ऊँची दीवार को सबसे पहले पार किया उसने गाँठ लगी धोती का एक सिरा स्वयं पकड़ा और दूसरा सिरा नीचे लटका दिया। उस धोती से लटककर अन्य लोग भी दीवार को पार कर गए। जेल से बंदियों की फरारी से सरकारी महकमे में हड़कंप मच गया। सरकार ने फरार सारे कैदियों को खतरनाक मुजरिम घोषित

करते हुए उन्हें जिंदा या मुर्दा पकड़नेवाले या पकड़ने में सहयोग करनेवाले के लिए 5 हजार रुपए इनाम की घोषणा कर दी। इनाम की यह राशि जयप्रकाश के लिए 10 हजार रुपए कर दी गई।

□

8

अगस्त क्रांति

आजादी की भावना से परिपूर्ण जयप्रकाश को अपने लिए हित-अनहित सोचने का वक्त कहाँ था? अंग्रेजों द्वारा दी जानेवाली निरंतर यातनाओं ने उनके शरीर में ईंधन का काम किया और वे अपने मिशन के प्रति इतने सक्रिय हो गए कि जेल में भी खाली नहीं बैठे। जेल से ही भयंकर योजनाओं को अंजाम देते रहे। जेल में उन्होंने अपने मस्तिष्क में भारत को आजाद करने का नक्शा तैयार कर लिया। उन्होंने आजादी के लिए देश के सभी प्रांतों एवं भूभागों को संगठनात्मक कड़ी में जोड़ने की अनिवार्यता महसूस की। जेल में ही उन्हें देश के किसी भी कोने में घटित एवं आंदोलन की सूचना पहुँचती थी। इस बीच उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा आह्वान किए गए अगस्त क्रांति के बारे में सुना जिसके कारण महात्मा गांधी को गिरफ्तार भी कर लिया गया था। इस अगस्त क्रांति आंदोलन ने उनके हृदय को झकझोरकर रख दिया। वे इसमें अपनी भागीदारी आवश्यक रूप से निभाना चाहते थे, अत: जेल से भाग निकले।

जेल से फरार जयप्रकाश गया, मुगलसराय होते हुए बनारस पहुँचे और स्वयं गंगा पार करके उत्तर बिहार की ओर चल पड़े। बनारस पहुँचकर जयप्रकाश उन लोगों से मिले, जो उत्तर भारत में

अगस्त क्रांति को संचालित कर रहे थे। पर यहाँ के नेतृत्व से उनका मतभेद हो गया और वह बंबई की ओर चल पड़े।

बंबई पहुँचने के बाद उन्होंने अंग्रेजी सत्ता से अपनी सुरक्षा एवं बचाव को पहली प्राथमिकता देते हुए एक परिचित यूरोपियन मित्र के यहाँ शरण ले ली। अंग्रेज पुलिस से बचने के लिए वह सदैव अपने ठहरने की जगह एवं वेश बदलते रहते थे, ताकि उनके छुपे रहने की खबर अंग्रेज प्रशासन को न मिल सके। जयप्रकाशजी इस दौरान अपना नाम भी बदलते रहते थे। इसी दौरान वे यूसुफ अली, लोहिया, पटवर्द्धन, अरुणा आसफ अली, दिनकर इत्यादि अच्छे लोगों से संपर्क बनाने में सफल हुए। मेहर अली तो उस समय बंबई के मेयर भी थे। ये सारे क्रांतिकारी भावना से ओत-प्रोत थे और आजादी के लिए प्रयत्नशील थे। ये लोग अपनी योजना को अति गुप्त रूप से अंजाम देने के पक्ष में थे। इन लोगों ने योजना बनाई कि प्रशासनिक भवनों, पुलिस मुख्यालयों एवं प्रमुख कार्यालयों पर आंदोलनकारियों द्वारा सम्मिलित रूप से धावा बोलकर क्षति पहुँचाई जाए एवं प्रमुख दस्तावेजों को जला दिया जाए, जिससे अंग्रेजी हुकूमत का मानसिक तनाव बढ़ जाए और वह सोचने पर मजबूर हो जाए।

उन्होंने समाजवादियों का नेतृत्व सँभालते हुए छात्रों, स्वतंत्रता सेनानियों और किसानों से आह्वान किया कि वे इस संग्राम की घड़ी में देश को परतंत्रता की बेड़ी से मुक्त करवाने के लिए अंग्रेजी सरकार पर टूट पड़ें। पर इस वक्त भी उन्होंने यह हिदायत दी कि हिंसा नहीं होनी चाहिए।

जयप्रकाश की इस फरारी ने उनके आंदोलन में सक्रिय रूप से शामिल स्वतंत्रता सेनानियों में नए प्राण फूँक दिए। लोगों में उत्साह की भावना का प्रवाह होने लगा और ऐसा लगने लगा जैसे जनमानस इस बार अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ ही फेंकेगी।

जयप्रकाश की फरारी ने भारतीय आंदोलनकारियों के लिए आग में घी का काम किया। आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। आंदोलनकारी इस प्रकार उतावले हो गए थे जैसे मतवाला हाथी। क्रांतिकारी लोग अपनी सुख-सुविधाओं, यहाँ तक कि अपनी मौलिक आवश्यकताओं, की भी परवाह नहीं कर रहे थे।

□

9

जयप्रकाश का उग्र रूप

जयप्रकाश बंबई से बिहार के सहरसा जिले में पहुँचे तथा वहाँ से पुलिस की आँखों में धूल झोंकते हुए नेपाल जा पहुँचे। अब तक जयप्रकाश अपने आपको पूर्णत: क्रांतिकारी के रूप में परिणत कर चुके थे। वह अंग्रेजी प्रशासन को प्रत्येक मामले में विफल कर देना चाहते थे। वह चाहते थे कि ऐसी भयानक घटना को अंजाम दिया जाए कि अंग्रेज परेशान हो जाएँ। जयप्रकाश उनके कार्यालय एवं अदालतों को पूर्णत: बंद करवा देना चाहते थे। उनके प्रशासकीय तंत्र को बिलकुल पंगु कर देना चाहते थे। इसके लिए वे धर्म, जाति एवं वर्ग विभेद को भूलकर व्यापक पैमाने पर आंदोलनकारियों का मजबूत संगठन बनाना चाहते थे, जो कि सिर्फ आजादी के लिए लड़े। जयप्रकाश को अंग्रेजों के चरित्र, स्वभाव, प्रकृति एवं बेईमान इरादे का अनुभव हो चुका था। वह जानते थे कि जब तक अंग्रेजों की प्रत्येक काररवाई का जवाब प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिया जाएगा तब तक वे भारत को आजाद नहीं करेंगे। वार्ता और अहिंसात्मक काररवाई से अंग्रेजों के कानों पर जूँ नहीं रेंगने वाली है। इसलिए जब तक इनके संपूर्ण परिचालन को ठप नहीं किया जाएगा, प्रशासनिक एवं अदालती काररवाई को चोट नहीं पहुँचाई जाएगी, तब तक वे भारत की गुलामी रूपी जंजीर के ताले नहीं खोल

पाएँगे। इसलिए संपूर्ण देश में एक महान् क्रांतिकारी लहर पैदा कर, उन्माद को बढ़ाकर अंग्रेजों के विरुद्ध परचम लहरा देना चाहते थे। वे पूरे देश में क्रांतिकारियों का जाल बिछा देना चाहते थे, ताकि अंग्रेजों का भारत में करवट भी बदलना मुश्किल हो जाए। उनका मानना था कि इसके लिए वह अहिंसा के रास्ते से हटकर हिंसा का रास्ता भी अपनाने के लिए तैयार थे। देश की आजादी के लिए सब जायज है। अपनी इसी योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह बंबई से सहरसा की ओर पलायन कर गए।

सहरसा से वह नेपाल कैसे पहुँचे, इसके लिए उन्हें रोचकतापूर्ण नाटकीय ढंग को अंजाम देना पड़ा। वस्तुस्थिति यह थी कि पुलिस उनके पीछे लगी थी, इसलिए पुलिस की आँखों में धूल झोंककर, छल का सहारा लेते हुए जयप्रकाश दूल्हे की पोशाक धारण कर और विजय पटवर्द्धन दुलहन की पोशाक धारण कर हाथी पर सवार होकर सुरक्षित ढंग से पुलिस की नजरों से अपने आपको बचाते हुए नेपाल पहुँचे। नेपाल में जयप्रकाश ने 'आजाद दस्ते' का गठन किया। आजाद दस्ते के क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण देने हेतु हनुमान नगर में व्यवस्था की गई।

परंतु इधर जयप्रकाश का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था। कार्य की अधिकता से उन्हें आराम करने का समय नहीं मिल पा रहा था। इसी बीच बंगाल में अकाल पड़ गया। बंगाल में भयानक

भुखमरी फैल गई, जिसके बारे में सुनकर जयप्रकाश को झटका लगा। बंगाल जाकर उन्होंने वहाँ के लोगों को राहत पहुँचाने एवं सहयोग और सेवा प्रदान करने की ठानी तथा इसके लिए तैयारी भी की। परंतु इसी दौरान उन्हें मलेरिया बुखार ने जकड़ लिया, मजबूरन उन्हें निर्णय बदलना पड़ा।

'आजाद दस्ते' दिन दूना रात चौगुना ताकतवर एवं विस्तृत होते गए। उनका काम सत्ता के प्रतिष्ठानों पर हमला करना और सरकारी मशीनरी को नुकसान पहुँचाना था। यहाँ पर भी जयप्रकाश ने स्पष्ट रूप से हिदायत दी कि हिंसा नहीं की जाएगी तथा इस दस्ते का उद्देश्य सिर्फ तोड़-फोड़ करना था, सार्वजनिक स्थानों पर हमला करके किसी की जान को नुकसान पहुँचाना नहीं। उन्होंने लोगों को शख्त हिदायत दी थी कि वे इस प्रकार के कामों में संलग्न न हों।

'आजाद दस्ते' के कामों तथा इसके प्रशिक्षण केंद्र के नेपाल में होने की भनक इस बीच ब्रिटिश सरकार को लग गई। ब्रिटिश सरकार के दबाव के कारण जयप्रकाश, लोहिया और 'आजाद दस्ते' के अन्य पाँच लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। पर हनुमान नगर में ही 'आजाद दस्ते' के क्रांतिकारियों ने हमला करके उन सभी को पुलिस के चंगुल से आजाद करवा लिया।

स्थिति की गंभीरता तथा खतरे को भाँपकर जयप्रकाश नेपाल से दिल्ली आ गए। दिल्ली से क्रांतिकारी कार्यविधि चलाने में अफगानिस्तानियों से सहायता लेने के उद्देश्य से वह रावलपिंडी के लिए रवाना हुए। इस यात्रा के दौरान उन्होंने बहुत ही सावधानी बरतते हुए स्टेशन पर अखबार लिया और एक कप चाय पीने की इच्छा जाहिर की; परंतु इसी समय उनके पास सादी वरदी में एक अंग्रेज और दो सिक्ख पुलिस जवान पहुँचे। अंग्रेज कोई और नहीं, बल्कि लाहौर का पुलिस अधीक्षक विलियम रॉबिंसन था, जिसने उनसे पूछा, ''क्या तुम जयप्रकाश नारायण हो?''

जयप्रकाश ने उत्तर दिया, ''नहीं सर, मैं एस.पी. मेहता हूँ।''

फिर अंग्रेज पुलिस अधीक्षक ने पूछा, ''तुम कहाँ जा रहे हो?''

जयप्रकाश ने जवाब दिया, ''रावलपिंडी जा रहा हूँ।''

पुलिस अधीक्षक ने पूछा, ''तुम्हारे और साथी कहाँ हैं?''

जयप्रकाश ने जवाब दिया, ''मेरे कोई भी साथी नहीं हैं, मैं अकेला हूँ।''

तब उसने पूछा, ''तो फिर तुम पीछे मुड़कर बार-बार किसे देखते थे?''

जयप्रकाश ने जवाब दिया, ''किसी को नहीं सर, यह आपका भ्रम है।''

परंतु वह उन्हें अच्छी तरह पहचान चुका था। दिल्ली से उनके पीछे खुफिया पुलिस लगा दी गई थी। पुलिस ने कहा कि तुम गलत बोल रहे हो, तुम निश्चित रूप से जयप्रकाश हो। और फिर बिना समय गँवाए पुलिस ऑफिसर तथा लाहौर के एस.पी. विलियम रॉबिंसन ने ट्रेन में ही जयप्रकाश को गिरफ्तार कर लिया।

गिरफ्तार करके जयप्रकाश को लाहौर के किले में डाल दिया गया, जहाँ यातनाओं का दौर शुरू हो गया। एक महीने तक उन्हें एक एकांत काल कोठरी में रखा गया। उसी कोठरी में उन्हें खाना-पीना, पेशाब-पैखाना सब करना था।

उनसे बार-बार उनके साथियों के बारे में पूछा गया, पर उन्होंने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया तथा बार-बार यही कहा कि वह उतना ही जानते हैं जितना कि पुलिस। इस बारे में उन्होंने लिखा था, ''मैं उन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार था, जिनका संबंध मेरी गुप्त गतिविधियों से नहीं था। मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना था कि मैं भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का शत्रु था। मैं अपने देश की स्वाधीनता के लिए काम कर रहा था और ऐसा

करता रहूँगा, जब तक मेरे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती या मेरी मृत्यु नहीं हो जाती।''

यातनागृह में उन्हें एक कुरसी पर बैठाकर उनके दोनों हाथ पीछे बाँध दिए गए। इस हालात में उन्हें करीब दस दिनों तक रखा गया। उन्हें सोने नहीं दिया जाता। जैसे ही झपकी लगती, गाल पर जोर से चाटा मारा जाता या किसी प्रकार का शोर करके उन्हें उठा दिया जाता था। उन्हें प्रतिदिन लगभग 14 से 19 घंटे तक यातना दी जाती थी।

उस यातना को याद करके जयप्रकाश ने लिखा, ''मैं महसूस करता हूँ कि कहीं मैं खूँखार जानवर में न बदल जाऊँ। ऐसा लगता है, मेरे अंदर वैर और बदला लेने की धधकती पाशविक ज्वालाएँ उठ रही हैं। अपनी मानवता को बनाए रखने के लिए मुझे अपने साथ जूझना पड़ा।'' उस किले की जेल को उन्होंने भारत सरकार का टॉर्चर हाउस भी कहा।

यातनाओं का वह दौर करीब 45 दिनों तक चलता रहा। जब इन सबका उन पर कोई असर नहीं हुआ तो अंत में पूछताछ बंद कर दी गई और उन्हें एक अच्छे कमरे में रखा जाने लगा तथा अखबार इत्यादि दिए जाने लगे। एकांत को दूर करने के लिए उन्हें लाहौर जेल में ही बंदी राममनोहर लोहिया से मिलवाया गया। लोहिया से मिलकर जयप्रकाश की खुशी का ठिकाना न रहा।

जब बाहर के लोगों को पता चला कि जेल में जयप्रकाश पर अत्याचार हो रहा है तो पूर्णिया पारड़ीवाला, पुरुषोत्तम जिकमदास और पूर्णतया बनर्जी आदि लोगों ने लाहौर उच्च न्यायालय में अपील दायर कर दी। इधर लोहिया ने भी ब्रिटिश लेबर पार्टी के अध्यक्ष प्रो. हेराल्ड जे. लास्की के नाम पत्र लिखा और इन यातनाओं का जिक्र किया। इस पत्र को गुप्त रूप से जेल से बाहर भिजवा दिया गया।

इन कारणों के फलस्वरूप 16 महीने लाहौर जेल में रहने के

पश्चात् जनवरी 1945 में जयप्रकाश तथा लोहिया को आगरा जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। कुछ दिनों बाद ब्रिटिश सांसदों का एक शिष्टमंडल भारत आया। शिष्टमंडल के प्रमुख रिनोल्ड जयप्रकाश और लोहिया से जेल में मिलने गए। भारत सरकार का होम मेनर भी उनके साथ था।

हिंसा-अहिंसा के पक्ष पर स्पष्टीकरण करने को कहा जाने पर जयप्रकाश ने कहा कि उनका उद्देश्य आजादी है, जो यदि अहिंसा से मिली तो ठीक परंतु अगर जरूरत पड़ी तो वे हिंसा से प्राप्त करने से भी नहीं हिचकेंगे।

विवश होकर 11 अप्रैल, 1946 को जयप्रकाश और लोहिया को रिहा कर दिया गया। यहाँ से वे दिल्ली गए, जहाँ जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। इसके पश्चात् बनारस होते हुए वे पटना पहुँचे। पटना के गांधी मैदान (जो उस समय बाँकीपुर मैदान के नाम से जाना जाता था) में उनका भव्य स्वागत किया गया। लगभग 1 लाख लोगों की भीड़ जुटी थी। सभा की अध्यक्षता बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह ने की थी। सभा का प्रारंभ करते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने जयप्रकाश पर लिखी अपनी कविता सुनाई। श्रीकृष्ण सिंह ने उन्हें 'युवकों का हृदय सम्राट्' कहा।

इस अवसर पर जयप्रकाश नारायण ने ओजपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने अपने स्वागत को अपना सम्मान नहीं बल्कि अगस्त क्रांति के प्रति अभिनंदन कहा तथा कहा, ''मैं जब जेल में था तब अकसर इस बात की चिंता करता था कि जेल से छूटकर जब मैं स्वतंत्र होऊँगा तो कैसे और किन लोगों के साथ काम करूँगा। आप लोगों के उल्लास भरे स्वागत ने मुझे यह विश्वास दिला दिया है कि आजादी की लड़ाई में आप सब मेरे साथ हैं।''

उन्होंने लोगों से कहा कि, ''सरकार तैयारी में लगी हुई है। पुलिस थाने शस्त्रों से भरे जा रहे हैं। हमें भी तैयार हो जाना

चाहिए।''

अगस्त क्रांति को हिंसात्मक आंदोलन कहकर आलोचना करनेवाले कांग्रेसी नेताओं की जमकर खिंचाई करते हुए उन्होंने कहा, ''ऐसी क्रांति किसी भी देश में बहुत कम होती है। यह एक अपूर्व स्थिति थी और कांग्रेस इसका पूर्ण सदुपयोग नहीं कर सकी। करीब 40 हजार लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया और हम पर अब अभियोग लगाया जा रहा है कि हमने अहिंसा का पालन नहीं किया।'' उन्होंने गांधीजी की अहिंसा पर अपना गहरा विश्वास जताया, पर साथ ही यह भी कहा कि, ''आजादी के लिए अगर हिंसा का रास्ता भी अपनाना पड़ा तो मैं इसके लिए तैयार हूँ।''

जुलाई 1946 में कांग्रेस को वायसराय द्वारा अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया तथा कांग्रेस ने इस आमंत्रण को स्वीकार करते हुए राष्ट्रमंडल में प्रवेश स्वीकार कर लिया। जयप्रकाश नारायण ने इस निर्णय का कड़ा विरोध किया और कहा कि कांग्रेस अपने क्रांतिकारी स्वरूप को छोड़ती जा रही है। जयप्रकाश की नजर में कांग्रेस को आजादी से ज्यादा सत्ता प्रिय होती जा रही थी। कांग्रेस अपना वास्तविक रूप छोड़ती जा रही थी। वह आँख मूँदकर अंग्रेजों की शर्त एवं समझौते पर हामी भरती जा रही थी, जो सत्ता-लोलुपता का परिचायक था। कांग्रेस की दृष्टि वर्तमान पर थी, देश के भविष्य पर नहीं। यही कारण था कि जयप्रकाश के बहुत करीब रहनेवाली कांग्रेस अब उनसे दूरी बरतने लगी थी।

□

10

आजादी और बँटवारा

स्वतंत्रता आंदोलन में अभी भारत को सफलता भी नहीं मिली थी, उसके पहले ही अंग्रेजों ने भारत में बँटवारे का बीज बो दिया।

देश में सांप्रदायिक दंगे फैला दिए गए। धार्मिक उन्माद को बढ़ावा दिया गया, ताकि भारत छिन्न-भिन्न एवं कमजोर हो जाए। यह सांप्रदायिक भावावेश न रुकनेवाला प्रतिफल था। येन-केन-प्रकारेण कुछ समय उपरांत भारत को आजादी मिली; परंतु अखंड भारत के रूप में नहीं, विखंडित भारत व पाकिस्तान के रूप में। फलतः संपूर्ण दिखनेवाला भारत अपंग-सा प्रतीत होने लगा, जिसकी दूरी एवं खाई को कम करने में अभी तक सफलता नहीं मिली है। 1946 के करीब इस सांप्रदायिकता ने भयानक रूप धारण कर लिया।

वर्ष 1946 में देश में आजादी का संघर्ष तो चल ही रहा था, पर साथ-ही-साथ सांप्रदायिक और अलगाववादी शक्तियों ने अपना बीभत्स रूप दिखाना शुरू कर दिया था। देश के विभाजन तथा अन्य मुद्दों को लेकर सांप्रदायिक दंगों की शुरुआत हो चुकी थी।

सन् 1946 में बिहार में भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए। जयप्रकाश ने अपने प्राणों की परवाह नहीं की और दंगा-पीड़ित क्षेत्रों में

निकल गए। स्थिति की भयानकता को देखकर उनका कोमल और करुण हृदय विचलित हो उठा। हिलसा थाना क्षेत्र में एक गाँव में मुसलमानों का भयानक कत्लेआम देखकर वह अपने रोष को दबा न सके तथा गाँव के लोगों को इस अमानवीय कार्य के लिए बहुत धिक्कारा। जब किसी ने उनसे कहा कि यह नोआखाली का बदला है, तो उन्होंने कहा, ''इनमें से कौन गया था नोआखाली में हिंदुओं का कत्ल करने? वहाँ का बदला आपने यहाँ लिया, बेकसूरों से। फिर यहाँ का बदला पंजाब में लिया जाएगा और पंजाब का यू.पी. में। याद रखिए, अगर बदले का यही सिलसिला चलता रहा तो पूरे देश के शहर-शहर में, गाँव-गाँव में लोग मारे जाएँगे, घर जलाए जाएँगे। पूरा देश जल जाएगा। भारत तबाह हो जाएगा।''

जयप्रकाश ने गाँव के लोगों का जलपान करने का निवेदन ठुकरा दिया और कहा, ''मैं यहाँ का पानी भी नहीं पी सकता।''

इसी समय धर्म के आधार पर देश के विभाजन का खतरा सच्चाई में बदलता दिखाई दे रहा था। कांग्रेस भी धीरे-धीरे इस विभाजन को स्वीकार करती दिख रही थी। जयप्रकाश कांग्रेस की इन नीतियों से खिन्न हो उठे और अपनी पार्टी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से 'कांग्रेस' शब्द हटाकर उन्होंने अपना विरोध व्यक्त किया तथा साथ ही फरवरी 1947 में कानपुर में समाजवादियों के सम्मेलन में यह भी घोषणा कर दी गई कि सोशलिस्ट पार्टी में सदस्य बनने के लिए कांग्रेस का सदस्य होना अब जरूरी नहीं है।

इसी बीच आजादी देश में एकता को खंडित करती हुई आई। 15 अगस्त, 1947 को देश तो स्वतंत्र हो गया, पर देश दो खंडों में बँट गया—भारत और पाकिस्तान। साथ ही पूरा देश सांप्रदायिक दंगों की चपेट में आ गया।

जयप्रकाश कांग्रेस की नीतियों से और भी उद्विग्न हो उठे तथा उन्होंने आरोप लगाया कि आजादी के पश्चात् कांग्रेस सिर्फ सत्ता के एक केंद्र में बदल गई है। गांधीजी ने जयप्रकाश को कांग्रेस की

अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया। कांग्रेस के कुछ गुटों ने बड़ी चतुराई से ऐसा नहीं होने दिया।

इसी समय भारतीय राजनीतिक पटल पर एक ऐसी घटना हुई, जिसने भारतीय राजनीति में शून्य की स्थिति पैदा कर दी। 30 जनवरी, 1948 के दिन दिल्ली में महात्मा गांधी की गोली मारकर हत्या कर दी गई। ऐसा लगने लगा जैसे समय रुक-सा गया हो।

गांधीजी की मृत्यु के पश्चात् समाजवादियों और कांग्रेस के बीच संबंध पूरी तरह से टूट गए। कांग्रेस ने कहा कि कोई भी व्यक्ति, जो किसी दूसरी पार्टी का सदस्य है, कांग्रेस का सदस्य नहीं बन सकेगा। बदले में समाजवादियों ने मार्च 1948 में वार्षिक सम्मेलन का आयोजन किया तथा कांग्रेस त्यागने का निर्णय किया। सोशलिस्ट पार्टी ने एक प्रस्ताव पारित किया तथा उसमें कांग्रेस की कड़ी आलोचना करते हुए कहा गया कि गांधीजी कांग्रेस को जन-सेवक का छाता बनाना चाहते थे, उसे लोक सेवक संघ का रूप देना चाहते थे; पर कांग्रेस ने अपने आपको राजनीतिक दल में बदल डाला है, जिसका एकमात्र लक्ष्य सत्ता में रहना हो गया है। प्रस्ताव में कहा गया कि जहाँ कांग्रेस से सोशलिस्टों को निकाला जा रहा है वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों और संप्रदायवादियों को शामिल किया जा रहा है।

जयप्रकाश और लोहिया ने इस प्रकार कांग्रेस में व्याप्त सत्ता-मोह तथा भ्रष्टाचार के खिलाफ मोरचा खोल दिया। सदाचार, संयम और सच्चाई को राजनीति का मुख्य आधार माननेवाले दोनों नेताओं ने किसी भी परिस्थिति में इन आधारभूत बातों का साथ न छोड़ने की मानो कसम खा ली थी। उनके इन गुणों का उनके प्रबल विरोधी भी सम्मान करते थे।

अगस्त 1951 में सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक राँची में हुई। 1952 में होनेवाले पहले लोकसभा आम चुनाव को लेकर इस बैठक में भारी विवाद हुआ था। जयप्रकाश नारायण पार्टी

के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा चुनाव लड़ने के खिलाफ थे। बाकी सदस्यों ने बहुमत से उनके इस विचार को अस्वीकार कर दिया। जयप्रकाश का कहना था कि पार्टी के वरिष्ठ सदस्यों को चुनाव लड़ने के बजाय संगठन को मजबूत करने में योगदान देना चाहिए।

सोशलिस्ट पार्टी ने पूरा जोर लगाकर चुनावों में भाग लिया। जमींदारी उन्मूलन, विदेशी पूँजी निवेश का राष्ट्रीयकरण, शीतयुद्ध की समाप्ति जैसे मुद्दों के आधार पर चुनाव में लड़ने के बावजूद पार्टी का प्रदर्शन अत्यंत निराशाजनक रहा। सोशलिस्ट पार्टी 12 सीटों पर ही विजय हासिल कर सकी। कांग्रेस ने 302 सीटों पर विजय हासिल की तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी 27 सीटों के साथ द्वितीय स्थान पर रही।

इस घटना के बावजूद जयप्रकाश निराश नहीं हुए। उनका मानना था कि देश-सेवा एवं समाज-सेवा करने के लिए चुनाव जीतना कोई जरूरी नहीं, बल्कि होनी चाहिए।

सितंबर 1952 में जयप्रकाश एवं किसान मजदूर प्रजा पार्टी के नेता आचार्य जे.बी. कृपलानी के आपसी बातचीत के फलस्वरूप सोशलिस्ट पार्टी एवं किसान मजदूर प्रजा पार्टी को एक साथ मिलाकर 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' का गठन किया गया। संसद् में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों की संख्या दोनों दलों के सांसदों को मिलाकर 18 हो गई।

कांग्रेस और समाजवादी लोग पूरी तरह से एक-दूसरे से टूट चुके थे तथा उनमें आपसी संबंध बनने के कोई आसार नहीं दिख रहे थे। इसी समय फरवरी 1953 में नेहरू ने जयप्रकाश को बातचीत के लिए आमंत्रित किया तथा साथ ही मंत्रिमंडल में शामिल होने का निमंत्रण भी दिया। जयप्रकाश ने 4 मार्च, 1957 को नेहरू को पत्र के द्वारा जवाब दिया। उसमें अन्य बातों के अलावा जयप्रकाश ने मंत्रिमंडल में शामिल होने के लिए 14 शर्तों का भी उल्लेख किया। नेहरू ने उन शर्तों को मानने में अपनी

मजबूरी प्रकट कर दी। खासकर जयप्रकाश द्वारा मौलिक संविधान के संशोधन के लिए उन्होंने पूरी तरह से असमर्थता जताई। इस प्रकार जयप्रकाश और नेहरू के बीच वार्त्ता की जो आशा थी, वह पूरी तरह से धूमिल हो गई।

□

11

भारत की स्वतंत्रता एवं जयप्रकाश का राजनीति से संन्यास

कभी संयुक्त रूप में अंजाम देनेवाली कांग्रेस और जे.पी. की सोशलिस्ट पार्टी में काफी दूरियाँ व्याप्त हो गई थीं, जिसमें इस घटना ने और भी प्रतिकूल भूमिका निभाई, जब नेहरू ने सरकार में शामिल होने के लिए जयप्रकाश की शर्तें मानने से इनकार कर दिया था। इस बरताव ने जयप्रकाश के मानस-पटल में भारतीय राजनीति से विलगाव पैदा कर दिया और उन्होंने दिशा परिवर्तन का मन बना लिया।

जयप्रकाश चाहते थे कि भारत को सम्मिलित रूप में अखंड भारत की संज्ञा में आजादी मिले। उन्होंने इसके लिए अथक प्रयास भी किया। भारत में निहित कांग्रेस एवं और दलगत पार्टियों की नीति इनसे भिन्न थी, जिसके कारण जयप्रकाश का यह स्वप्न मिथ्या बनकर रह गया। भारत को आजादी मिली, परंतु जयप्रकाश का चिंतन दिवास्वप्न ही रह गया। अतः उन्होंने देश को आजादी दिलाकर अपने आपको जिम्मेदारी से मुक्त कर और अपनी सोच का दिशा परिवर्तन करते हुए सर्वोदय को सफल करने में अपने आपको व्यस्त कर लिया।

इन घटनाओं के बीच जयप्रकाश का झुकाव सर्वोदय आंदोलन, जो विनोबा भावे द्वारा चलाया जा रहा था, के प्रति होने लगा। वह इस आंदोलन से जुड़ने लगे थे। उन्होंने अपने आपको विनोबा भावे का शिष्य घोषित कर दिया। 19 अप्रैल, 1954 को बिहार में बोधगया में सर्वोदय सम्मेलन हुआ। वहाँ जयप्रकाश ने भूदान आंदोलन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दरशाते हुए कहा, ''यह एक ऐसा आंदोलन है, जिसमें एक साल या पाँच साल देने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए मैं जीवन-दान देने की घोषणा करता हूँ।''

भूदान आंदोलन के द्वारा विशाल भूभाग के स्वामियों को प्रोत्साहित किया जाता कि वे अपनी जमीन का कुछ हिस्सा दान में दें। बाद में उस जमीन को उन लोगों के बीच बाँट दिया जाता जिनके पास जमीन नहीं थी।

प्रारंभ में जयप्रकाश के मन में इस आंदोलन की सफलता के प्रति आशंका थी। पर जब बिहार के गया जिले में लोगों ने 7,000 एकड़ जमीन को भूदान के लिए दान कर दिया तो जयप्रकाश की निष्ठा इस आंदोलन के प्रति बढ़ गई। इस आंदोलन में सबसे ज्यादा प्रभावित करनेवाली बात यह हुई कि बहुत सारे ऐसे लोगों ने अपनी जमीन दान दी, जिनके अपने खुद के पास कुछ ज्यादा जमीन नहीं थी।

बिहार के गया जिले में सर्वोदय आश्रम स्थापित किया गया। सर्वोदय आंदोलन सिर्फ भूदान तक ही सीमित नहीं था। यह वह संस्थान था, जिसने वर्षा के पानी के रक्षण और गोबर गैस जैसे महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी प्रयोगों पर भी कार्य किया था। जयप्रकाश ने अपने को सर्वोदय और भूदान के अलावा ग्रामोद्योग और ग्राम स्वराज जैसे कार्यों में भी संलग्न कर रखा था। इन सब कार्यों में अपने को पूरी तरह से संलग्न करने हेतु जयप्रकाश ने अक्तूबर 1957 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता से त्यागपत्र देकर अपने आपको पार्टी के कार्यों से पूरी तरह मुक्त कर लिया था।

जयप्रकाश ने सदा ही समाज-सेवा को राजनीति से ऊपर रखा। अपने निबंध 'भारतीय राज व्यवस्था का पुनर्निर्माण' में उन्होंने दलीय राजनीति की कड़ी आलोचना करते हुए कहा, ''दलीय राजनीति नेतागिरी को जन्म देती है, राजनीतिक नैतिकता को दबाती है तथा विवेकहीनता, कपट आचरण एवं षड्यंत्र को बढ़ावा देती है।''

उन्होंने कहा कि, ''जहाँ एकता की आवश्यकता है वहाँ ये दल विवाद खड़े करते हैं और जहाँ मतभेदों को न्यूनतम करना चाहिए वहाँ उनको बढ़ाया-चढ़ाया जाता है। ये दल हमेशा दलीय हितों को राष्ट्रीय हितों से ऊपर रखते हैं।''

उन्होंने कहा कि इस प्रकार की राजनीति लोगों को सामान्य लोगों को संग में भाग लेने से रोकती है तथा सत्ता केवल कुछ ही राजनेताओं के एक छोटे से समूह में सीमित होकर रह जाती है।

जयप्रकाश के इन विचारों तथा कार्यों से यूरोप के शांतिवादी तथा समाजवादी उनकी ओर आकर्षित हुए। उन्होंने जयप्रकाश के विचारों और कार्यों को अच्छी तरह से समझने के उद्देश्य से जयप्रकाश को यूरोप आने का आमंत्रण दिया। अप्रैल 1958 में जयप्रकाश प्रभावती के साथ यात्रा के लिए निकले तथा विभिन्न यूरोपीय देशों के साथ इजराइल, मिस्र, लेबनान, पाकिस्तान इत्यादि देशों का दौरा किया।

12 अक्तूबर, 1962 को भारत पर चीन का आक्रमण हुआ। उस समय जयप्रकाश ने उस आक्रमण को चीन की चुनौती कहा तथा उसे वैचारिक आक्रमण करार देते हुए कहा कि हमें इस चुनौती का उत्तर देना है। उन्होंने कहा कि, ''आज चीन के आक्रमण से देश में एकता की भावना फैली है। इस भावना का लाभ उठाते हुए हमें चीन की चुनौती का जवाब देना होगा।'' उन्होंने कहा कि, ''देश को केवल सैन्य दृष्टि से ही नहीं बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी ताकतवर बनाना होगा।'' उन्होंने चीनी साम्यवाद

के उत्तर में सर्वोदय को प्रस्तुत किया।

यद्यपि भूदान आंदोलन एक बड़ी आशा के साथ प्रारंभ हुआ था। इस आंदोलन के द्वारा करीब 6 लाख एकड़ जमीन भूमिहीन लोगों में वितरित की गई; पर बाद के दिनों में यह आंदोलन तेज होता गया। जयप्रकाश ने पाया कि यह आंदोलन सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के अपने उद्देश्य में सक्षम साबित नहीं हो पा रहा था। यह वह समय था जब जयप्रकाश को अपने राजनीतिक कार्य की रूपरेखा के बारे में फिर से सोचने को मजबूर होना पड़ा।

इधर जयप्रकाश और विनोबा भावे के रिश्तों में कुछ खटास आने लगी थी। जयप्रकाश विनोबा को अपना गुरु मानते थे, पर उन दोनों के विचारों में व्यापक मतभेद थे। विनोबा जहाँ समाज में धीरे-धीरे होनेवाले परिवर्तन को ज्यादा प्रभावशाली मानते थे वहीं दूसरी तरफ जयप्रकाश जल्दी और क्रांतिकारी परिवर्तन के हिमायती थे। दोनों के बीच का यह वैचारिक मतभेद समय के साथ-साथ और भी गहराता गया।

इन सबके बावजूद जयप्रकाश की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई। उन्हें लगातार प्रबल समर्थन मिलता रहा तथा लोकतंत्र के इस सिपाही ने कभी भी हार न मानने की ठान ही ली थी, चाहे रास्ते कितने भी कठिन क्यों न हों।

जयप्रकाश ने हमेशा सामान्य जनता की लोकतंत्र में भागीदारी का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने हमेशा कहा कि अगर जनता लोकतंत्र में अपनी सक्रिय भागीदारी नहीं निभाती तो वह एक पाप कर रही है और लोकतंत्र के गिरते हुए स्तर के लिए जिम्मेदार है।

जयप्रकाश के इन सभी कार्यों को देखते हुए वर्ष 1965 में उन्हें फिलीपींस का 'रमन मैग्सेसे पुरस्कार' प्रदान किया गया। पुरस्कार के प्रशस्ति-पत्र में उनके कार्यों की सराहना करते हुए कहा गया कि वह आधुनिक भारत की लोकात्मा की रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं। इस पुरस्कार से उन्हें 400 रुपए प्रतिमाह की राशि

प्राप्त होने लगी, जो उनके अत्यंत ही सादे रहन-सहन के लिए काफी थी।

किसी भी मसले पर जयप्रकाश ने हमेशा वही कहा तथा वही किया जो सही लगता था, चाहे इसके लिए उन्हें कितने भी विरोध का सामना करना पड़े। इस समय देश में नगालैंड तथा कश्मीर की समस्या सिर उठाए खड़ी थी। जयप्रकाश ने सक्रिय रूप से इन समस्याओं का समाधान करने के लिए अपना योगदान दिया।

देश के पूर्वोत्तर में नगा समस्या भयानक रूप ले चुकी थी। अंग्रेजों के खिलाफ पृथक् रूप से स्वतंत्रता आंदोलन चला रहे नगाओं ने अंग्रेजों के प्रस्थान के पश्चात् अपने क्षेत्र को भी स्वतंत्र मानते हुए आजादी की माँग की। 1946 में ही राष्ट्रीय नगा परिषद् का गठन कर स्वतंत्रता की माँग की गई थी। नगाओं द्वारा स्वतंत्रता की माँग धीरे-धीरे उग्रवादी रूप धारण करने लगी। आंदोलन हिंसक होने लगा था। 1952 के आम चुनाव का नगाओं ने बहिष्कार कर दिया था। जयप्रकाश की सलाह पर ही नेहरूजी ने नगालैंड को पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया तथा 1962 में वहाँ की विधानसभा की पहली बैठक हुई। जयप्रकाश ने नगा विद्रोहियों से बातचीत कर उन्हें अलगाववाद की अपनी माँग से हटने के लिए आग्रह किया। जयप्रकाश पहले राष्ट्रीय नेता थे, जिन्होंने जंगलों के अंदर जाकर विद्रोहियों से बात की थी।

जयप्रकाश के लगातार प्रयास से बिगड़ चुकी नगा समस्या यदि सुलझी नहीं तो कम-से-कम इतना जरूर हुआ कि वार्ता में नगाओं का विश्वास बना रहा। यह बात इस बात से जाहिर होता है कि कुछ लोगों का विचार है कि यदि जयप्रकाश ने प्रेम से नगाओं का दिल नहीं जीता होता तो नगालैंड दूसरा वियतनाम बन जाता।

कश्मीर समस्या के समाधान के लिए भी जयप्रकाश हमेशा प्रयासरत रहे। पर उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि कश्मीर का भारत में विलय केवल वैधानिक नहीं बल्कि भावात्मक स्तर पर

भी होना चाहिए। वर्ष 1964 में एक प्रतिनिधिमंडल के साथ वह पाकिस्तान भी गए तथा वहाँ के तत्कालीन राष्ट्रपति जनरल अयूब खान से भारत-पाकिस्तान रिश्तों के सामान्य बनाने के लिए वार्ता की।

इसी समय पूर्वी पाकिस्तान, जो कि आज बँगलादेश के नाम से स्वतंत्र राष्ट्र है, पाकिस्तान से अलग होकर एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उदय के लिए संघर्षरत था। जयप्रकाश ने विभिन्न देशों का दौरा कर पूर्वी पाकिस्तान के इस संघर्ष में उनसे वैचारिक सहयोग की अपील की तथा उन देशों को, जो पूर्वी पाकिस्तान की इस माँग के खिलाफ थे, यह समझाने का प्रयास किया कि पूर्वी पाकिस्तान की स्वतंत्रता की यह माँग उचित है।

इन सब घटनाओं से अलग वर्ष 1971-72 में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण जयप्रकाश को लोकनायक के रूप में प्रसिद्धि मिली। अप्रैल 1972 में बड़ी संख्या में चंबल के दुर्दांत डाकुओं ने जयप्रकाश के समक्ष आत्मसमर्पण किया। वे डाकू आतंक का पर्याय माने जाते थे तथा उन पर सरकारी इनाम घोषित था।

इस घटना की पृष्ठभूमि मई 1960 की वह घटना है, जब विनोबा भावे के समक्ष चंबल के 20 डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया था। यह आत्मसमर्पण तब हुआ जब मई 1960 में विनोबा भावे फाँसी की सजा पा चुके डाकू तहसीलदार सिंह की पहल पर पदयात्रा पर निकले थे।

इस घटना के लगभग ग्यारह वर्ष बाद जब कुछ बागियों ने आत्मसमर्पण का इरादा बनाया तो उन्होंने विनोबा भावे से संपर्क किया। सरदार माधो सिंह नामक बागी ने जगरूप सिंह को अपना प्रतिनिधि बनाकर उसे विनोबा भावे के पास भेजा। विनोबा, जो उस समय संन्यास ले चुके थे, ने जगरूप सिंह को जयप्रकाश से मिलने को कहा। माधो सिंह को दिल्ली में जयप्रकाश का पटना का पता

मिला और वह जयप्रकाश से मिलने के लिए पटना चल पड़ा। अक्तूबर 1971 में जगरूप सिंह जयप्रकाश से पटना में मिला और डाकुओं के आत्मसमर्पण की इच्छा के बारे में जयप्रकाश को बताया। हालाँकि माधो सिंह ने साथ में कुछ शर्तें भी रखी थीं, जिस पर विचार करने का जयप्रकाश ने वादा किया।

चंबल घाटी की इस समस्या के समाधान में सार्थक प्रयास करते हुए जयप्रकाश ने चंबल घाटी शांति समिति योजना का गठन किया। साथ ही उन्होंने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के मुख्यमंत्रियों के साथ संपर्क साधकर उन्हें डाकुओं की इस मंशा के बारे में अवगत कराया। इधर जयप्रकाश के सहयोगियों तथा डाकुओं में लगातार बातचीत होती रही। डाकू इस बात पर अड़े हुए थे कि वे आत्मसमर्पण जयप्रकाश के सामने ही करेंगे।

लंबी बातचीत के बाद ग्वालियर में पहला आत्मसमर्पण होना तय हुआ। 11 अप्रैल, 1972 के दिन डाकू मोहर सिंह ग्वालियर में जयप्रकाश से मिला और उसने उनके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। मोहर सिंह, जो चंबल का आतंक था, के आत्मसमर्पण से सारा समाज चकित रह गया। मोहर सिंह ने प्रभावती के पैर छूकर क्षमायाचना की। प्रभावती ने मोहर सिंह को क्षमा करते हुए उसके माथे पर तिलक लगाया।

14 और 16 अप्रैल को खेल समारोहों में जब डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया तो बड़ा ही अद्‌भुत दृश्य सामने था। दुर्दांत व खूँखार माने जानेवाले डाकुओं का दल बारी-बारी से आत्मसमर्पण करता जा रहा था। गांधीजी की तसवीर के सामने हथियारों का ढेर लग चुका था। माधो सिंह ने डाकुओं की तरफ से प्रतिज्ञा पत्र पढ़ा, ''हम अब अपने आपको समाज की सेवा के लिए समर्पित करते हैं। बाबा विनोबाजी और बाबू जयप्रकाशजी के आशीर्वादों के साथ हम एक नई जिंदगी शुरू कर रहे हैं। हमसे बहुत भूलें हुई हैं। इसके लिए हमें दिल से पछतावा हो रहा है। हमारी वजह से

जिन-जिन लोगों को दु:ख और तकलीफ हुई है, उन सबसे हम माफी माँगते हैं।''

इस घटना ने जयप्रकाश की साफ छवि को सिद्ध किया तथा यह भी प्रकट किया कि अगर पूरी ईमानदारी से काम किया जाए तो हम किसी भी बुराई पर जीत हासिल कर सकते हैं। जैसा कि डाकुओं के आत्मसमर्पण की इन घटनाओं से जाहिर होता है।

इधर जयप्रकाश के निजी जीवन में एक भूचाल आया। 15 अप्रैल, 1973 की प्रात: कैंसर से पीड़ित प्रभावती का देहांत हो गया। इस घटना से जयप्रकाश के जीवन में गहरी रिक्तता आ गई। उन्होंने सामाजिक गतिविधियों से अपने को पूरी तरह विमुख कर लिया तथा स्वयं को अध्यात्म के साथ जोड़ लिया। पर नियति को शायद कुछ और ही मंजूर था। यह वह समय था जब देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी। कांग्रेस पार्टी का भारतीय सत्ता पर नियंत्रण मजबूत होता जा रहा था। भ्रष्टाचार, अनैतिकता, कालाबाजारी जैसी हैं, यह लोकतंत्र के लिए खतरनाक हैं। बुराइयों का असर समाज पर दिखने लगा था। इन स्थितियों में जयप्रकाश जैसे नेता के लिए चुप रहकर स्थिति को स्वीकार कर लेना असंभव था।

जयप्रकाश ने स्थिति को अच्छी तरह समझा तथा यह महसूस किया कि यही वह समय है जब कांग्रेस सरकार के इस तानाशाही शासन के विरुद्ध आंदोलन का श्रीगणेश किया जा सकता है। उन्होंने यह समझ लिया था कि जन सामान्य में असंतोष की एक व्यापक लहर है तथा वह इस शासन के विरुद्ध आवाज देने के लिए तैयार हैं।

जयप्रकाश ने इसी समय पूरे देश का दौरा प्रारंभ किया तथा लोगों को राजनीति में फैलती जा रही अनैतिकता के बारे में जाग्रत् करना आरंभ किया। उन्होंने अपना संदेश फैलाना शुरू किया कि किस प्रकार प्रजातंत्र की आधारभूत संरचना को वर्तमान राजनीतिज्ञों

द्वारा ध्वस्त किया जा रहा है। उन्होंने जनता को चुनाव के नाम पर हो रहे धोखे के प्रति सचेत करते हुए कहा कि किस प्रकार से चुनाव लड़े और जीते जा रहे हैं, किस प्रकार चुनाव बाहुबल और धन-शक्ति का खेल बनते जा रहे हैं। उन्होंने युवाओं का आह्वान करते हुए उनसे आगे आकर इस स्थिति के विरुद्ध लड़ाई लड़ने को कहा।

उन्होंने कहा कि कांग्रेस ब्रिटिश सत्ता की तरह व्यवहार कर रही है। उन्होंने लोगों से आगे आने को कहा तथा यह कहा कि युवाओं में असंतोष की जो भावना है वह इस सत्ता के विरुद्ध आंदोलन का रूप कायम कर लेगी।

कांग्रेस अपनी सत्ता-शक्ति के शिखर पर थी। वर्ष 1971-72 के युद्ध में पाकिस्तान पर विजय तथा बँगलादेश के उद्‌भव ने कांग्रेस की शक्ति को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। सारी सरकारी मशीनरी सरकार के सीधे नियंत्रण में थी तथा संसद् भी अपना महत्त्व खोती जा रही थी।

दिसंबर 1973 में जयप्रकाश ने सभी संसद् सदस्यों को पत्र लिखकर अपनी चिंता से उन्हें अवगत कराया। उन्होंने कहा कि आप सभी को देश की स्थिति के बारे में पता है तथा जनता के प्रतिनिधि के रूप में इसका निदान आपका नैतिक कर्तव्य है।

इसी समय गुजरात में नवनिर्माण समिति द्वारा चलाए गए प्रयासों का व्यापक प्रभाव वहाँ की राजनीति पर पड़ा। असेंबली भंग हो गई। दूसरी तरफ बिहार में भी गतिविधियाँ तेज हो गई थीं। 15 मार्च, 1974 के दिन छात्र संघर्ष समिति के बैनर तले हजारों छात्रों ने पटना में जुलूस निकाला। उन्होंने विधानसभा पर हमला बोल दिया। पुलिस को गोली चलानी पड़ी। शहर में हिंसा व आगजनी तथा तोड़-फोड़ की घटनाएँ हुईं। पुलिस ने स्थिति पर काबू पाने के लिए वहाँ कर्फ्यू लगा दिया।

19 मार्च के दिन बिहार के एक बड़े हिस्से में हिंसा भड़क

उठी। पुलिस की गोली से लोगों के मरने की खबर ने सनसनी फैला दी। चारों तरफ यह खबर तेजी से फैली कि पुलिस की गोली से 10 लोग मारे गए हैं।

इस आंदोलन के मुख्य छात्र नेता थे–नरेंद्र सिंह, लालू प्रसाद यादव, सुशील कुमार मोदी, नीतीश कुमार इत्यादि। इन युवा नेताओं ने जयप्रकाश से इस आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार करने का आग्रह किया, पर जयप्रकाश ने अस्वस्थता के कारण नेतृत्व स्वीकार करने से मना कर दिया।

पूरे बिहार में स्थिति खराब होती जा रही थी। पटना, धनबाद, मुंगेर इत्यादि शहरों में कर्फ्यू लागू कर दिया गया था। कर्फ्यू तोड़नेवालों को देखते ही गोली मारने का आदेश जारी कर दिया गया। युवा नेता लालू प्रसाद यादव, सुशील कुमार मोदी और रविशंकर प्रसाद को 18 मार्च की घटना में अभियुक्त बनाकर गिरफ्तार कर लिया गया। 23 मार्च के दिन छात्र संघर्ष समिति ने बिहार बंद का आह्वान किया, जो काफी सफल रहा।

इधर जयप्रकाशजी यद्यपि आंदोलन को नैतिक समर्थन दे रहे थे, पर सीधे नेतृत्व के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने पुलिस की फायरिंग की निंदा करते हुए सरकार को सलाह दी कि उसे छात्रों के साथ मिलकर आपसी विवाद सुलझा लेना चाहिए।

8 अप्रैल को छात्रों, वकील, साहित्यकारों, सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने पटना में मौन जुलूस निकाला। प्रदर्शनकारियों के हाथ पीछे बँधे थे और गले में एक तख्ती लटक रही थी, जिस पर लिखा था–'क्षुब्ध हृदय है बंद जुबान, हमला चाहे जैसा हो, हाथ हमारा नहीं उठेगा'।

19 अप्रैल को पटना के गांधी मैदान में एक विशाल जनसभा आयोजित की गई। इसी जनसभा में जयप्रकाश को 'लोकनायक' की उपाधि से सम्मानित किया गया। 12 अप्रैल के दिन गया में पुलिस फायरिंग में 5 छात्र मारे गए। इस घटना से जयप्रकाश का

हृदय डोल गया और उन्होंने छात्रों का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। पर कुछ दिनों के लिए प्रोटेस्ट ग्रंथि की समस्या के इलाज के लिए उन्हें भिलौर जाना पड़ा। वहाँ से वे तुरंत वापस पटना पहुँचे।

5 जून, 1974 के दिन पटना में करीब 5 लाख लोगों का एक विशाल जनसमूह एकत्र हुआ। सरकार द्वारा ट्रेन व बसों की सेवाओं को रोक दिए जाने के पश्चात् भी लोग पैदल चलकर पटना पहुँचे थे। विधानसभा भंग करने की माँग को लेकर 6-7 किलोमीटर लंबा जुलूस राजभवन की ओर चल पड़ा। जुलूस का नेतृत्व स्वयं जयप्रकाश कर रहे थे। जयप्रकाश ने संपूर्ण क्रांति का आह्वान कर दिया। उन्होंने छात्रों से त्याग और बलिदान की गुहार लगाई और शायद छात्र जयप्रकाश के नेतृत्व में यह सब देने के लिए तैयार थे। जयप्रकाश ने कहा कि, ''हमें संपूर्ण क्रांति चाहिए, इससे कम नहीं।''

जुलाई में छात्रों के द्वारा एक रैली का आयोजन किया गया। इसका उद्देश्य सारे शैक्षिक संस्थानों को बंद करवाना था। आंदोलनकारियों का विचार था कि इस शिक्षा-प्रणाली से उन्हें सिर्फ नुकसान उठाना पड़ रहा है। यह गुलामी की शिक्षा है, जिससे सिर्फ बेरोजगारी उत्पन्न हो रही है।

1 अगस्त के दिन जयप्रकाश ने लोगों से कर नहीं देने का आह्वान किया। 15 अगस्त के दिन छात्र संघर्ष समिति द्वारा स्वतंत्रता दिवस के शुभ अवसर पर भारी संख्या में लोगों से भाग लेने का आह्वान किया गया।

10 अक्तूबर के दिन पटना में एक विशाल रैली में जयप्रकाश नारायण ने बिहार सरकार से कहा कि वह विधानसभा को भंग कर दे। साथ ही यह भी चेतावनी दी कि अगर विधानसभा भंग नहीं होती है तो जनता अपनी विधानसभा खुद गठित कर लेगी तथा वास्तविक विधानसभा की वैधता को मानने से इनकार कर दिया जाएगा। उन्होंने चेतावनी दी कि 4 नवंबर के दिन सरकारी सचिवालय

पर हमला बोला जाएगा तथा सरकारी तंत्र को पंगु बना दिया जाएगा।

4 नवंबर को जनता को पटना में एकत्र होने से रोकने के लिए भी सरकारी तंत्र ने सारे उपायों का सहारा लिया। बस एवं ट्रेनों की सेवा को भंग कर दिया गया। पर इन सबके बावजूद भारी जनसमूह पटना पहुँचा। लोगों पर लाठी चार्ज किया गया। इसमें जयप्रकाश को काफी चोटें आईं।

आंदोलन बिहार से बाहर फैलने लगा था। लोग समझ चुके थे कि कांग्रेस सरकार तानाशाही तरीके से शासन कर रही है। इसी असंतोष एवं विद्रोह की लहर के बीच 6 मार्च, 1975 को जयप्रकाश के नेतृत्व में दिल्ली में एक विशाल रैली आयोजित की गई। रैली में नारा दिया गया–'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'।

□

12

आपातकाल एवं जे.पी. आंदोलन

वैसे तो नेहरू के समय से ही जयप्रकाशजी राजनीति से अलग हो गए थे और अपना संपूर्ण समय सर्वोदय संस्था हित भूदान आंदोलन में लगाए हुए थे; परंतु इधर देश में कुछ अजीब स्थिति उत्पन्न हो गई। कांग्रेस सत्ताधारी पार्टी ने अपने आपको एकमात्र भारत की संप्रभुत्व पार्टी समझ रखा था और तानाशाह रूप ले रखा था। देश के विभिन्न भूभागों से सत्ता के खिलाफ बगावत शुरू हो गई थी। वरिष्ठ नागरिक, प्रबुद्ध वर्ग, नवयुवक वर्ग–सभी आंदोलन के लिए सड़क पर उतर आए थे। देशवासियों में व्याप्त अराजकता एवं विपरीत परिस्थिति से जयप्रकाश अनभिज्ञ नहीं थे। परंतु वे दोबारा राजनीति में अभिरुचि नहीं लेना चाहते थे। हालाँकि बचपन से ही जयप्रकाश में जन्मजात लक्षण था अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना। उन्हें सरकार की तानाशाही बरदाश्त तो नहीं हो रही थी, परंतु वह प्रत्यक्ष रूप में न आकर अप्रत्यक्ष रूप में असंतुष्ट देशवासियों को दिशा निर्देश दे रहे थे। बिहार के लोग, जो जयप्रकाश को अपनी खानदानी विरासत समझते थे, भला उन्हें परदे के अंदर कब तक रहने देते। फलतः गोपनीय ढंग से आंदोलनकारियों को दिशा निर्देशित कर रहे जयप्रकाश को खुलेआम होना पड़ा। 19 अप्रैल, 1974 को ही पटना के गांधी मैदान की विशाल सभा में

उन्हें वर्तमान केंद्र में सामान्य सत्ता एवं माहौल कायम करने की बागडोर थमा दी गई। परंतु फिर भी, वे इस समय तक पूर्णत: प्रत्यक्ष रूप में सत्ता के सामने नहीं आए थे। उस समय तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी थीं। जब वह अपने नेतृत्व में एक विशाल रैली का आयोजन दिल्ली में कर रहे थे उसी समय कुछ एसी घटनाएँ हुईं, जिसमें जयप्रकाश को प्रत्यक्ष हो जाना पड़ा और देश में सत्ता परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

आंदोलन व आक्रोश के इस समय में दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिसने कांग्रेसी सत्ता को हिलाकर रख दिया। 12 जून, 1975 को इलाहाबाद हाई कोर्ट ने इंदिरा गांधी के लोकसभा में चयन को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। हाई कोर्ट ने कहा कि इंदिरा गांधी ने अपने चयन के लिए गैर-कानूनी तरीकों का सहारा लिया। इसके साथ ही कोर्ट ने इंदिरा गांधी की लोकसभा सदस्यता को रद्द कर दिया। इंदिरा गांधी को कोर्ट द्वारा सुप्रीम कोर्ट में अपील करने के लिए 20 दिनों का समय दिया गया। दूसरी तरफ गुजरात विधानसभा के चुनाव में जनता मोर्चा ने कांग्रेसी सरकार को उखाड़ फेंका।

देश के प्रधानमंत्री की लोकसभा सदस्यता गैर-कानूनी घोषित होते ही सारा देश आश्चर्यचकित हो उठा। अपील के लिए दिए गए

20 दिनों के पहले ही 26 जून को इंदिरा गांधी द्वारा देश में आंतरिक आपातकाल की घोषणा कर दी गई। विपक्ष के प्रमुख नेताओं जैसे मोरारजी देसाई, अटल बिहारी वाजपेयी इत्यादि को गिरफ्तार कर लिया गया। जयप्रकाशजी ने इंदिरा गांधी से इस्तीफे की माँग की।

26 जून की सुबह जयप्रकाश को भी गिरफ्तार कर लिया गया तथा हरियाणा के सोहना नामक स्थान पर रखा गया। मोरारजी देसाई भी वहीं पर बंदी थे। पर दोनों को मिलने नहीं दिया गया। इसी अवस्था में जयप्रकाश की तबीयत काफी खराब हो चली थी। डॉक्टरों ने कहा कि गुर्दे काम नहीं कर रहे हैं। उन्हें जसलोक अस्पताल में भरती किया गया। वहाँ से डेढ़ महीने बाद उन्हें छोड़ दिया गया। पर हर तीसरे दिन उन्हें डायलेसिस करवाना पड़ता था।

इसी बीच पुलिस और खुफिया विभाग को आंदोलन को दबाने में झोंक दिया गया। प्रेस तथा संचार के अन्य साधनों पर पूरी तरह से अंकुश लगा दिया गया। न्यायपालिका की स्वतंत्रता को छीन लिया गया। लाखों लोगों एवं विपक्ष के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तथा मीसा के तहत बंदी बना लिया गया। पर विरोध तथा आंदोलन चलता रहा। आपातकाल का यह बादल देश पर करीब 20 महीनों तक छाया रहा। अंततः जनवरी 1977 में सरकार ने जनता की शक्ति के आगे झुककर आपातकाल को वापस ले लिया। साथ ही जनवरी 1977 में ही आम चुनावों की घोषणा इंदिरा गांधी सरकार द्वारा की गई। यद्यपि चुनाव 1976 में ही होने थे, पर सरकार द्वारा लोकसभा का कार्यकाल एक वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया था।

जयप्रकाश की सलाह पर सभी विपक्षी दलों ने एकजुट होकर चुनावों में भाग लेने का फैसला किया। इसके लिए सभी दलों ने मिलकर जनता पार्टी का गठन किया।

चुनाव का परिणाम कांग्रेस पार्टी के लिए अंधकार का समय

लेकर आया। जनता पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ और कांग्रेस को भारी हार का सामना करना पड़ा। इंदिरा गांधी खुद रायबरेली से राजनारायण के सामने चुनाव हार गईं। संजय गांधी को अमेठी से तथा अन्य कांग्रेसी बाहुबलियों को भी हार का सामना करना पड़ा। कांग्रेस की हार ने लोगों में फैले व्यापक गुस्से तथा असंतोष की भावना को प्रदर्शित किया था।

पर इस जीत के बाद जनता पार्टी में प्रधानमंत्री पद को लेकर आपसी विवाद होने लगा। जयप्रकाश नारायण और आचार्य जे.बी. कृपलानी के प्रयासों से मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री पद के लिए चुना गया।

पर जनता पार्टी ज्यादा समय तक सत्ता में कायम नहीं रह सकी। सत्ता में आते ही जनता पार्टी में वही हाल हो गया, जो कांग्रेस का था। सत्ता-सुख तथा लोभ की भावना से उसके नेता भी ग्रस्त होने लगे। जयप्रकाश का जनता पार्टी से मोहभंग हो गया और उन्होंने कहा, ''जनता सरकार भी पिछली कांग्रेस सरकार के रास्ते पर ही चल रही है। लोग उम्मीद खो रहे हैं, क्योंकि जनता पार्टी उनकी अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पा रही है।''

जयप्रकाश की अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। एक बार तो उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि हड़बड़ी में पी.टी.आई. द्वारा उनकी मृत्यु की खबर को भी प्रसारित कर दिया गया। आकाशवाणी ने भी उस खबर को प्रसारित कर दिया। बाद में जब समाचार एजेंसियों को जयप्रकाश के जीवित होने की खबर मिली तो इस समाचार को वापस लिया गया। जयप्रकाश का स्वास्थ्य तो इधर सँभलने लगा था, पर जनता पार्टी पर संकट गहराने लगा था। मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा और चौधरी चरण सिंह देश के नए प्रधानमंत्री बन गए।

अस्वस्थ जयप्रकाश इस स्थिति में कुछ करने में अक्षम थे। जनता पार्टी की इस हालत तथा उसके नेताओं में सत्ता की छीना-झपटी

को देखकर वह बड़े दु:खी थे।

जनता पार्टी इस स्थिति में ज्यादा दिनों तक सत्ता में नहीं रह पाई और जल्दी ही दुबारा चुनाव हुए। इस चुनाव में जनता पार्टी को हार का सामना करना पड़ा तथा कांग्रेस पुन: केंद्र में सत्ता में आई। जनता पार्टी का जो भी हस्र हुआ हो, पर तत्कालीन घटनाओं ने कांग्रेस पार्टी के एकमात्र राष्ट्रीय पार्टी होने की विचारधारा को हिलाकर रख दिया। जयप्रकाश ने लोकतंत्र की ताकत का सही रूप दिखला दिया था। जयप्रकाश के अथक प्रयासों के सामने कांग्रेस जैसी पार्टी भी घुटने टेकने को मजबूर हो गई थी।

आजादी के पश्चात् हुए इस आंदोलन में अब जनता अपनी ही सरकार के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी। उसने देश में एक क्रांतिकारी माहौल का निर्माण किया था, जो जयप्रकाश के नेतृत्व के कारण ही संभव हुआ था।

जयप्रकाश की बेदाग और निष्पक्ष छवि ही ऐसी थी कि देश का युवा वर्ग उनके नेतृत्व में मरने-मारने को तत्पर था। आज ऐसी नेतृत्व शक्ति शायद ही किसी नेता के पास हो।

जयप्रकाश को हमेशा यह बात कचोटती रही कि आजादी के 21 वर्ष के पश्चात् भी देश की हालत में कोई सुधार नहीं आया। पूरे देश में भ्रष्टाचार एवं बेरोजगारी का माहौल था। शिक्षा व्यवस्था कमजोर स्थिति में थी तथा भूमि सुधार का कोई नामोनिशान नहीं था। किसानों, विशेषकर भूमिहीन किसानों, की स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी। इन्हीं परिस्थितियों में उन्होंने संपूर्ण क्रांति की गुहार लगाई थी। संपूर्ण क्रांति के बारे में जयप्रकाश ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा कि मेरे लिए संपूर्ण क्रांति का मतलब होगा–सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक बदलाव। इस बदलाव से देश में एक ऐसी अवस्था आएगी, जहाँ सामान्य जन खुशहाली और समृद्धि का जीवन जीने में सफल होंगे। सामाजिक बदलाव की इस अवस्था में हरिजनों, खेतिहर मजदूरों, भूमिहीन

किसानों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। उन्होंने कहा कि समाजवाद, सर्वोदय, साम्यवाद सभी एक ही लक्ष्य हैं। चाहे रास्ता अलग-अलग क्यों न हो और यह लक्ष्य है—संपूर्ण क्रांति।

अपने इन्हीं विचारों और नेतृत्व शक्ति के बल पर जयप्रकाश युवाओं के नेता बन गए। त्याग और ईमानदारी की एक जीती-जागती मिसाल बनकर ही अस्वस्थ और वृद्ध जयप्रकाश देश के युवाओं के नेता बन पाए थे।

उन्होंने सदा ही अपने आपको सत्ता-सुख से अलग रखा तथा सेवा-भावना को सर्वोपरि स्थान दिया। अगर वह चाहते तो आसानी से प्रधानमंत्री के पद को पा सकते थे। पर उन्होंने सदा ही अपने आपको एक वैचारिक तथा नैतिक शक्ति के प्रतीक के रूप में बनाए रखा। उनकी यही शक्ति उनके रास्ते पर चलनेवाले लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत रही।

□

13

महाप्रयाण

अनवरत संघर्ष करते-करते जयप्रकाश थक चुके थे। वह देश और देशवासियों को तो नई दिशा दे चुके थे, पर जन-कल्याण के लिए उनका शरीर एवं मानसिक चिंतन कभी विश्राम नहीं कर पाया। मानो उन्होंने अपने आपको स्वयं ही दंडित कर लिया, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके शरीर एवं स्वास्थ्य पर पड़ा। 1977 के बाद जयप्रकाश के स्वास्थ्य में जो गिरावट आई, उनके गुर्दों ने पूरी तरह से काम करना बंद कर दिया था। मौत से महीनों तक संघर्ष करने के बाद उस महान् राष्ट्रीय नेता ने 7 अक्तूबर, 1979 को अंतिम साँस ली। उनके निधन से सारा देश शोक में डूब गया। प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने सात दिनों का राष्ट्रीय शोक घोषित किया। बिहार के मुख्यमंत्री रामसुंदर दास ने तेरह दिनों के राजकीय शोक की घोषणा की।

उनकी शवयात्रा में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी, पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई व इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर, अटल बिहारी वाजपेयी, शेख अब्दुल्ला जैसे गण्यमान्य जन तथा लगभग 10 लाख लोग शामिल थे। बिरले लोगों को ही ऐसी विदाई मिलती है।

वह साधारण जन के नेता के रूप में उभरे तथा प्रकाश का ऐसा दीया जलाया जो उनके जीवन काल में कभी नहीं बुझा, जब

तक वह दीप हमेशा के लिए अनंत में विलीन न हो गया। आज भी शायद हम ऐसे दीप का इंतजार कर रहे हैं, जो आज के हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन में फैलते अंधकार को अपने प्रकाश द्वारा खत्म करे।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के कार्यों की सराहना-स्वरूप वर्ष 1999 में भारत सरकार ने मरणोपरांत उन्हें 'भारत रत्न' के सम्मान से सम्मानित किया।

जयप्रकाश नारायण, जो एक साधारण परिवार से संबंध रखते थे, आजीवन देश एवं देशवासियों की भलाई के लिए संघर्ष करते रहे। संघर्ष के बल पर ही उन्होंने दयनीय आर्थिक स्थिति होते हुए भी विदेश जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। बचपन से ही उन्हें अनेक कठिनाइयों से जूझना पड़ा। बड़े भाई एवं बहन की मृत्यु, माँ-बाप की मृत्यु, फिर पत्नी की मृत्यु बरदाश्त करते हुए भी इन्होंने देश की आजादी एवं देशवासियों को जो दिशा प्रदान की, उन्हें युग-युगांतर तक सम्मान के साथ याद किया जाता रहेगा और उनकी कीर्ति एवं यश का गुणगान भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

जयप्रकाश ने जीवन में कभी भी स्वार्थ और लोभपूर्ण राजनीति नहीं की। उन्होंने असंवैधानिक और असंगत बातों से सदैव अपने को दूर रखा; देश के सभी धर्मों को अपना धर्म, सभी की समस्या को अपनी समस्या समझा; भारत के सभी वर्गों, धर्मों, जातियों के लोगों को अपना परिवार समझा। वह संपूर्ण देशवासियों के सुख से सुखी एवं उनके दु:ख से दु:खी होते थे।

जयप्रकाश प्रबुद्धों, वृद्धों, नौजवानों, बालक-बालिकाओं सभी में लोकप्रिय थे। उनके समकालीन देश से विदेश तक के सभी नेतागण उन्हें प्रतिष्ठा एवं सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वह किसी व्यक्ति विशेष, जाति विशेष, दल विशेष के लिए नहीं बल्कि सर्वव्यापी थे और सर्वकल्याण के लिए इस वसुंधरा पर जनमे थे।

उन्होंने अपने त्याग, संघर्ष, बलिदान, निस्स्वार्थ भावना, सहानुभूति, दयालुता, ममत्व, आदर्शवाद, दृढ़ निश्चय एवं लगनशीलता जैसे सद्‌गुणों के आधार पर देश व विदेश में लोकप्रियता एवं सर्वोच्च स्थान को प्राप्त किया, जिस ऊँचाई को भविष्य में भी स्पर्श करने की कल्पना करना असंभव-सा प्रतीत होता है। सत्ता से अलग रहकर भी उन्होंने देश से विदेश तक गौरव प्राप्त किया, जो किसी भी सत्ताधारी नेता, राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के लिए स्वप्न मात्र ही होगा।

मृत्यु सांसारिक प्रक्रिया है। उत्थान के बाद पतन एवं जन्म के बाद मरण तो लगा ही रहता है। अमानवीय प्रवृत्ति के लोग तो अपने दुष्कर्मों के कारण प्रायः रोज ही मरते हैं, परंतु जयप्रकाश जैसी महान् आत्मा मृत्योपरांत भी अमर हो आनेवाला भविष्य बनकर हम सभी को सही दिशा निर्देश करता रहेगा, दिग्भ्रमित देशवासियों को हमेशा उपदेशित और प्रकाश के मार्ग पर उन्मुख करता रहेगा।

धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे पुत्र-रत्न को जन्म दिया। हम सभी भारतवासियों की ओर से उन्हें शत-शत नमन!

□□□